एस.सी.ई.आर.टी., बिहार
द्वारा विकसित

1.2

दो वर्षीय सेवाकालीन डिप्लोमा इन एलिमेन्ट्री एजुकेशन (दूरस्थ शिक्षा)

बाल विकास और सीखना

भाग–1 (प्रथम सत्र)

राज्य शिक्षा शोध एवं प्रशिक्षण परिषद् (एस.सी.ई.आर.टी.),
महेन्द्रू, पटना, बिहार

एस.सी.ई.आर.टी., बिहार द्वारा विकसित

दो वर्षीय सेवाकालीन
डिप्लोमा इन एलिमेन्ट्री एजुकेशन (दूरस्थ शिक्षा)

बाल विकास और सीखना

भाग–1 (प्रथम सत्र)

S1.2

राज्य शिक्षा शोध एवं प्रशिक्षण परिषद् (एस.सी.ई.आर.टी.),
महेन्द्रू, पटना, बिहार - 800006

तकनीकी सहायता : ISA, SCERT

प्रकाशक

दूरस्थ शिक्षा निदेशालय
राज्य शिक्षा शोध एवं प्रशिक्षण परिषद्
(एस.सी.ई.आर.टी.), महेन्द्रू, पटना, बिहार

© दूरस्थ शिक्षा निदेशालय, (एस.सी.ई.आर.टी.), बिहार

ISBN	978-93-84709-42-6
डिप्लोमा इन एलिमेन्ट्री एजुकेशन (दूरस्थ शिक्षा) कार्यक्रम	
सत्र	प्रथम
विषयपत्र	बाल विकास और सीखना–1
प्रकाशन जून,	2016
प्रतियाँ	7000

विश्व बैंक सम्पोशित परियोजना के अन्तर्गत

डी.एल.एड. (ओ.डी.एल.) के साधनसेवियों एवं प्रशिक्षुओं
(कार्यरत शिक्षिकाओं - शिक्षकों)
के स्वाध्याय हेतु निःशुल्क उपलब्ध

पठन सामग्री विकास समूह

विषय-पत्र : बाल विकास और सीखना-1

दिशाबोध

- श्री संजीवन सिन्हा, निदेशक, राज्य शिक्षा शोध एवं प्रशिक्षण परिषद्, पटना
- डॉ. सैयद अब्दुल मोईन, विभागाध्यक्ष, अध्यापक शिक्षा विभाग, एस.सी.ई.आर.टी, पटना
- डॉ. प्रमिला मनोहरन, शिक्षा विशेषज्ञ, यूनिसेफ, पटना
- डॉ. ज्ञानदेव मणि त्रिपाठी, प्राचार्य, मैत्रेय कॉलेज ऑफ एजूकेशन एण्ड मैनेजमेन्ट, हाजीपुर (वैशाली)

परामर्श

- प्रोफेसर शमशाद हुसैन, पूर्व कुलपति, मगध विश्वविद्यालय, गया
- प्रो. अरबिन्द कुमार झा, विभागाध्यक्ष, शिक्षा विद्यापीठ, महात्मा गांधी अतर्राष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय, वर्धा
- डॉ॰ हृदयकान्त दीवान, विद्याभवन, उदयपुर, राजस्थान

संपादन

- डॉ॰ अर्चना, व्याख्याता, अध्यापक शिक्षा विभाग, एस.सी.ई.आर.टी, पटना

लेखन

- डॉ. शालिनी गुप्ता, ए.एन. कॉलेज, पटना
- श्रीमती सुनीता कुमारी, बी.एन.आर., कॉलेज, पटना
- श्रीमती नीतु सिंह, शिक्षिका, गांधी उत्क्रमित माध्यमिक(2) विद्यालय, खगौल, पटना
- चन्दन श्रीवास्तव, शोधार्थी, केन्द्रीय शिक्षा संस्थान, शिक्षा संकाय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
- श्री पंकज कुमार, शोधार्थी, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

संयोजन

- डॉ॰ अर्चना, व्याख्याता, अध्यापक शिक्षा विभाग, एस.सी.ई.आर.टी, पटना

आमुख

हमारे बिहार के विद्यालयों में ऐसे शिक्षकों एवं शिक्षिकाओं की ज़रूरत है जिसके लिए शिक्षण वृत्ति एक स्वाभाविक प्रतिबद्धता हो आरै जो शिक्षण को एक आनन्ददायी कार्य मानते हों उन्हें पढ़ाये जाने वाले विषय व पढ़ाने के काशैल तो अच्छी तरह से आते ही हों, साथ ही वह उन बच्चों को भी बेहतर तरीक़े से जानते व समझते हों जिन्हें वे पढ़ा रहे हैं। अतः विभिन्न सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक पृष्ठभूमि, खासकर उपेक्षित वर्ग से आनेवाले बच्चों के प्रति विद्यालय के शिक्षकों में सजगता एवं संवेदनशीलता होना सबसे जरूरी है, जिसके बिना उन बच्चों को विद्यालयी शिक्षा की प्रक्रिया में शामिल कर पाना असम्भव है। साथ ही, एक शिक्षक या शिक्षिका में लोकतांत्रिक मूल्यों के प्रति लगाव उसे सीखने–सिखाने की प्रक्रिया को रोचक व सहज बनाने में सहायी होता ह।ै बिहार जसै बहुलतावादी समाज में बेहतर शिक्षा तभी सभंव हो सकती है जबकि हम 'समता' व 'बहुलता' की समझ को अपनी शिक्षा प्रक्रिया के केन्द्र में रखे।

बीसवीं सदी के आख़िरी दशक और इस सदी के शुरुआत में पाठ्यक्रम का बदलाव एक गहरा सामाजिक आरै राजनैितक सवाल बनकर उभरा ह।ै जब पाठ्यक्रम में बदलाव 'तेज़ी' से हो रहा हो तो' शिक्षक' में इस संभावना को खोजा जाना लाज़मी है कि वह नयी अकादमिक स्थितियों से सामंजस्य कर सके और ज़रूरत हो तो उनसे मुक़ाबला भी कर सके। उदाहरण के तौर पर, एक संकुचित अवधारणा यहहै कि शिक्षक पाठ्यक्रम की बातो ं को गन्तव्य (बच्चों) तक पहुँचाने वाला एक एजेन्ट मात्र है जो कि बच्चो को पाठ्य–पुस्तकों में लिखी बातों को रटवायेगा व बच्चे उसे परीक्षा में पुनरोत्पादित करेगें। शिक्षक की इस रूढ़ीगत भूमिका को तत्काल बदले जाने की ज़रूरत है। नवीन पाठ्यचर्या पर आधारित इस विषयपत्र के माध्यम से यह अपेक्षा है कि प्रशिक्षित शिक्षक अपनी नयी भूमिका में बच्चों को उन स्थितियों को आलोचनात्मक तरीके से समझने में मदद करेगें जिनमें वे रहते ह।ैं बच्चें विभिन्न माध्यमों (पाठ्यचर्या, पाठ्यक्रम, पाठ्यपुस्तक, शिक्षक, परिवेश आदि) से दिये जाने वाले 'ज्ञान' को मात्र स्वीकार न करें बल्कि उनपर प्रश्नचिह्न भी लगा सकें।

ऐसी आदर्श शैक्षिक स्थिति का निर्माण एक सक्षम शिक्षक या शिक्षिका के माध्यम से ही हो सकता है, जिसकी तैयारी की आशा इस विषयपत्र के विभिन्न इकाइयों के विषयवस्तु के माध्यम से की गई है। प्रयास यह किया गया है कि प्रस्तुत पठन सामग्री, सरल, तथ्यात्मक रूप से सटीक, विषयवस्तु में निरन्तरता बनाए हुए हो। यथास्थान गतिविधियों के माध्यम से प्रशिक्षुओं को सक्रिय रूप से सहभागिता निभाने का अवसर दिया गया। आशा है आप इस पाठ्यसामग्री के माध्यम से शिक्षा की समकालीन आवश्यकताओं के प्रति संवेदनशील हो सकेंगे।

अंत में, यह बात स्पष्ट करना जरूरी है कि इस पठन सामग्री को आप अंतिम न माने। इसके साथ–साथ, प्रारम्भिक स्तर की पाठ्यपुस्तकों आरै विभिन्न प्रकार की आई.सी.टी. सामग्रियों को भी अपने अध्ययन का हिस्सा अनिवार्य रूप से बनाएं, तभी आपकी समझ में खुलापन और जिज्ञासा बनी रह पाएगी, अन्यथा आपका विद्यालयी शिक्षण का कार्य नीरस हो जाएगा। इस पठन सामग्री को और संवर्द्धित करने के लिए आपके सुझाव सदैव आमंत्रित हैं।

निदेशक

राज्य शिक्षा शोध एवं प्रशिक्षण परिषद्, बिहार

विषयसूची

इकाई	इकाई का नाम	पृष्ठ संख्या
1	बाल विकास एवं सीखनाः परिचय	11 - 39
2	बच्चों का शारीरिक एवं मनोगत्यात्मक विकास	41 - 68
3	संज्ञानात्मक विकास और सीखना	69 - 99
4	बच्चों के विकास एवं सीखने में समाज की भूमिका	101 - 127
5	बच्चों में सम्प्रत्यय विकास	129 - 146
	उपयोगी पठन सामग्री की सूची	147 - 148

आगे दिए गए विभिन्न इकाइयों की समझ को व्यापक बनाने के लिए निम्नलिखित ई-ससं ाधनों के उपयोग को प्रोत्साहित करें:

- इकाइयों के विषयवस्तु पर निर्मित आई.सी.टी /ऑडियो–विजुअल/एनिमेशन सामग्री।
- प्रारम्भिक स्तर की पाठ्यपुस्तकों पर आधारित डिजिटल सामग्री, जो इकाइयों से सम्बंधित हो।
- इकाइयों के विषयवस्तु से सम्बंधित फिल्म, डॉक्युमेटं री, प्रेजेन्टेशन, वेब–रिसोर्स, ओपेन रिसोर्स, आदि।

इकाई 1

बाल विकास एवं सीखना : परिचय

1.1 परिचय

1.2 उद्देश्य

1.3 पूर्व अनुभव

1.4 बाल विकास की समझ
- 1.4.1 बाल विकास की अवधारणा
- 1.4.2 बाल विकास के विभिन्न आयाम
- 1.4.3 बाल विकास को प्रभावित करनेवाले कारक

1.5 सीखना क्या है
- 1.5.1 सीखना और विकास में अंतर्सम्बंध
- 1.5.2 बच्चे कैसे सीखते हैं: कुछ सामान्य धारणाएं
- 1.5.3 सीखना की अवधारणा का विकास: व्यवहारवाद से लेकर रचनावाद तक

1.6 समेकन

1.7 प्रदत्त कार्य

1.1 परिचय

एक प्रभावी शिक्षक होने के लिए हमें यह समझना जरूरी है कि बच्चे का विकास कैसे होता है? विकास के दौरान उन्हें किन–किन प्रक्रियाओं एवं स्थितियों से गुजरना पड़ता है, उनमें क्या–क्या शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, संवेगात्मक परिवर्तन होते है एवं उनके विकास पर किन–किन कारकों का प्रभाव पड़ता है? यही समझ हमें प्रत्येक आयु व पड़ाव पर बच्चों की सामान्य विशेषताओं व उनमें पाए जाने वाले व्यक्तिगत अंतरों को समझने में मदद करती है। लेकिन, इन मुद्दों को समझने के लिए व्यापक दृष्टिकोण की जरूरत होगी। जैसे– बाल विकास एक जटिल प्रक्रिया है जिसके कई आयाम होते हैं। इस विकास की प्रक्रिया में विभिन्न कारकों जैसे–परिवेश, परिवार, संस्कृति, पोषण इत्यादि की भूमिका होती है। साथ ही, बाल विकास और सीखने के बीच के अंतर्सम्बंध भी बहुत जटिल हैं, जिनको निरन्तर समझा जाता रहा है और ऐतिहासिक तौर पर यदि सिद्धांतों का विश्लेषण करें तो उनमें कई बदलाव भी देखें जा सकते हैं। इन सब बातों को समझते हुए ही बच्चों के विकास के विशिष्ट आयामों के तरफ बढ़ना होगा। प्रस्तुत इकाई में हम बाल विकास एवं सीखने के बारे में शुरूआती समझ बनाएंगे।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के माध्यम से हमः

- बाल विकास की अवधारणा एवं उसके महत्व को समझ सकेंगे।
- वृद्धि एवं विकास में अंतर्सम्बंध स्थापित कर सकेगें।
- विकास के संदर्भ में प्रचलित विभिन्न मतों तथा प्रभावी कारकों का विश्लेषण कर सकेंगे।
- बाल विकास और सीखने की प्रक्रिया के अंतर्सम्बंधों से अवगत हो सकेंगे।

- सीखने के संदर्भ में जो ऐतिहासिक मत रहे हैं, उनकी परिचयात्मक समझ बना सकेंगे।

1.3 पूर्व अनुभव

हम सब ने अपने आस–पास बच्चों को बड़े होते तथा कुछ–कुछ सीखते हुए देखा है। पैदा होने के साथ से ही उनको सीखते–बढ़ते देखना बहुत ही रोचक अनुभव होता है। हर दिन उनमें कुछ न कुछ बदलाव आता है। अगर हम किसी छोटे बच्चे को दो–तीन महीने के अंतराल पर भी देखे तो पाते हैं कि पहले से कई सारे बदलाव आ गए हैं और उसने बहुत कुछ सीख भी लिया है। हालांकि हर बच्चा अपने आप में अलग होता है किन्तु बच्चों में होने वाले परिवर्तनों में कुछ सामान्य क्रम व चरण पहचाने जा सकते हैं। इस इकाई को समझने में यह अनुभव बहुत ही उपयोगी रहेगा।

1.4 बाल विकास की समझ

गतिविधि

नीचे दी गयी परिस्थितिओं को पढ़ें और यह बताने का प्रयास करें कि कौन–कौन सी परिस्थितियां विकास को इंगित करती हैं? और क्यों?

परिस्थिति 1. सर्दी व जुकाम की वजह से हमारी आवाज का बदल जाना

परिस्थिति 2. बच्चे का उम्र के साथ तेज गति से दौड़ना

परिस्थिति 3. पैर में चोट लगने के कारण चलना और स्वस्थ हो जाने पर ठीक से चलना

परिस्थिति 4. बच्चे की तार्किक एवं गणितीय क्षमता का बढ़ना

इस इकाई में बाल विकास शब्द उन परिवर्तनों से सम्बंधित है जो मनुष्यों में जन्म से लेकर मृत्यु तक होते हैं। परंतु यह शब्द सभी परिवर्तनों पर नहीं लागू होता है। यह केवल उन परिवर्तनों की ओर इंगित करता है जो व्यवस्थित तरीकों से दिखाई देते हैं और पर्याप्त समयावधि तक रहते हैं। ये परिवर्तन जीवन के एक निश्चित समय में होते हैं और जीवन का एक अंग बन जाते हैं। अतः ऊपर दी गयी गतिविधि में परिस्थिति 2 और 4 विकास को इंगित करती हैं जबकि परिस्थिति 1 और 3 जीवन के अस्थायी परिवर्त्तन को दर्शातें हैं। हालांकि ये अस्थायी परिवर्तन विकास नहीं है पर ये विकास को प्रभावित करते हैं। जैसा कि ऊपर दिए गए उदाहरणों में हम देख सकते कि सर्दी व जुकाम होने से या पैर में चोट लगने से कुछ परिवर्तन होते हैं जो हमारे काम करने कि क्षमता को प्रभावित करते हैं। मनोदशा में होने वाले ये परिवर्तन अस्थायी होते हैं और इसलिए इन्हें विकास नहीं माना जा सकता है।

बाल विकास से संबंधित इन परिवर्त्तनों का अध्ययन 'विकासात्मक मनोविज्ञान' के अंतर्गत करते हैं। बाल विकास, 'विकासात्मक मनोविज्ञान' की ही एक प्रयुक्त शाखा है जिसमें उन परिवर्तनों का अध्ययन किया जाता है जो जीवन के प्रथम दो दशकों के दौरान होते हैं, (बर्क, 2006)। इसमें मुख्यतः बच्चों के रूप, व्यवहार, रूचिओं, और लक्ष्यों में होने वाले उन विशिष्ट परिवर्तनों की खोज पर बल दिया जाता है जो उसके एक विकासात्मक अवस्था से दूसरी विकासात्मक अवस्था में प्रवेश करते समय होते हैं। साथ–ही–साथ यह खोजने का भी प्रयास किया जाता है कि यह परिवर्तन कब होते हैं, किन परिस्थितियों में होते हैं, इसके क्या कारण हैं, ये परिवर्तन बच्चों के व्यवहार को किस प्रकार प्रभावित करते हैं एवं क्या यह वैयक्तिक है या सार्वभौमिक है? यह अध्ययन क्षेत्र न केवल बच्चों के व्यवहार के सभी पक्षों को समझने में सहायता प्रदान करता है, बल्कि उनके व्यवहारगत परिवर्तन की प्रक्रिया एवं उससे जुड़े सभी प्रश्नों के उत्तर देने का भी प्रयास करता है।

1.4.1 बाल विकास की अवधारणा

'विकास' शब्द का अर्थ है– ''व्यवस्थित और संगतिपूर्ण तरीके से परिवर्तनों का एक प्रगतिशील श्रृंखला में होना''। यह प्रक्रिया व्यक्ति की उन सभी शारीरिक और व्यावहारिक विशेषताओं में परिवर्तन को इंगित करता है जो कि क्रमानुसार उभरते हैं और प्रगतिशीलता का द्योतक है।

विकास के संदर्भ में क्रमबद्धता एक महत्वपूर्ण विशेषता है। इससे तात्पर्य है कि विकास एक क्रम में होता है। विकास का प्रत्येक चरण पहले चरण के विकास पर आधारित होता है। हम देखते हैं कि बच्चे घुटनों पर चल पाने के बाद ही पैरों पर चल पाते हैं और चलने के बाद ही दौड़ना सीखते हैं। इसी प्रकार हम वयस्कों की जटिल परिस्थिति को संभालने की योग्यता बचपन में सरल कार्य करने की क्षमता से ही आती है। इस प्रकार विकास एक ऐसी प्रक्रिया है जिससे व्यक्ति अधिक सरलता और सामर्थ्य से कार्य करना सीखता है। 'प्रगतिशीलता' शब्द का तात्पर्य है कि इन परिवर्तनों की वजह से बच्चे को ऐसे कौशल व क्षमताएँ प्राप्त होती है जो पहले के कौशलों से अधिक जटिल और अधिक प्रभावशाली है। इसको समझने के लिए बच्चों का घुटने के बल चलने से लेकर पैरों पर चलने तक के विकास पर विचार कीजिए। ठीक से चलने के लिए यह आवश्यक है कि बच्चा सीधा खड़ा होकर और संतुलन बनाकर एक पैर के बाद दूसरा पैर रखे। इसके लिए मांसपेशियों में अधिक समन्वय की आवश्यकता होती है और इसलिए यह घुटनों पर चलने से अधिक जटिल है। ऐसे और भी बहुत उदाहरण हैं जिनसे यह प्रतीत होता है कि विकास का एक कदम दूसरे कदम का आधार बनता है।

गतिविधि

> एक साल से लेकर पन्द्रह साल तक की आयु के बच्चों में क्या–क्या बदलाव आते हैं, इसका अवलोकन कर अपनी समझ से एक सूची तैयार करें। देखें कि क्या आगे की सैद्धांतिक व्याख्याओं में भी वही कहा जा रहा है जो आपने अपने अवलोकन में पाया है।

यह सवाल भी महत्वपूर्ण है कि क्या बाल विकास की इस अवधारणा को हमेशा से ऐसे ही समझा जाता रहा है या फिर इस अवधारणा में भी समयानुसार कुछ परिवर्तन होते रहे हैं। यदि इस अवधारणा के विकास को देखें तो हमें पता चलेगा कि शैक्षिक मनोविज्ञान में समय–समय पर विकसित होनेवाली विभिन्न सिद्धांतों के मान्यताओं के अनुरूप ही बाल विकास की

अवधारणा को समझने का दायरा भी विकसित हुआ। बाल विकास के वर्तमान स्वरूप को समझने के लिए यह आवश्यक है कि इस अवधारणा के विकास से सम्बंधित कुछ प्रमुख मान्यताओं से भी परिचित हो जाया जाए। नीचे दी गयी सारणी में कुछ प्रमुख मान्यताओं का विवरण उनके विकास के क्रम में दिया गया है।

विकास से संबंधित प्रमुख मान्यताएं	प्रमुख बिन्दु	प्रमुख प्रतिपादक
जैविक परिपक्वता से संबंधित मान्यताएं	इसके अनुसार विकास मुख्यतः अनुवांशिकता से प्रभावित होता है एवं हमारा व्यवहार प्राकृतिक नियमों द्वारा तय होता है।	जी. स्टैनले हल एवं अर्नाल्ड गेसेल
व्यवहारवादी सिद्धांत के अंतर्गत मान्यताएं	इस विचारधारा के अनुसार बाह्य कारकों को विकास में काफी महत्वपूर्ण माना गया। यह व्यवहारवादियों का ही मत है कि वातावरणीय उद्दीपक–प्रतिक्रिया संबंधों द्वारा हम बच्चों के व्यवहार में सकारात्मक परिवर्तन ला सकते हैं।	जॉन बी. वाटसन और बी. एफ. स्किनर
संज्ञानात्मक विकास के सिद्धांत के अंतर्गत मान्यताएं	इसके अनुसार विकास में बच्चों की अपनी एक अहम भूमिका होती है। ज्ञानात्मक क्षमताएँ जैसे–कल्पना, तर्क, विचारशक्ति इत्यादि बच्चे को सीखने में मदद करती है और यथा अनुसार उनके विकास को प्रभावित करती है।	जीन पियाजे
समाजिक–सांस्कृतिक विकास के सिद्धांत के अंतर्गत मान्यताए	मनोविज्ञान के क्षेत्र में यह सबसे नवीन विचारधारा है जो विकास की तीन पक्षों की बात करता है: सीखना एक सामाजिक– सांस्कृतिक प्रक्रिया है; सीखना सार्थक और उद्देश्यपूर्ण क्रियाओं में हिस्सेदारी से होता है और समय के साथ सामाजिक–सांस्कृतिक बदलाव विकास एवं सीखने की प्रक्रिया को प्रभावित करते हैं।	लेव वायगोत्सकी

विकास के इन मान्यताओं से अवगत हाने के बाद यह विचार करें कि इनमें से किन मान्यताओं केसमीप आप अपनी मान्यता को पाते हैं। यह भी पता लगाएं कि इन मान्यताओं के प्रति हमारे समाज में क्या धारणाएं हैं। हमारे परिवार, आस–पास के लोगो व समुदाय की मनोवृति बाल विकास के विषय में क्या है।

प्रायः सभी बच्चों का गर्भकालीन विकास समान रुप से चलता है, लेकिन विकास क्रम में उनमें दिन– प्रतिदिन एक दूसरे से भिन्नता दिखाई देने लगती है। इन भिन्नताओं का प्रभाव उनकी व्यवहार प्रणाली पर पड़ता है। इन्हीं भिन्नताओं के कारण दो व्यक्तियों के शारीरिक और मानसिक रचनाओं में बहुत कुछ समानता होते हुए भी वे एक दूसरे से भिन्न हो जाते हैं। इस तरह बच्चे अपना जीवन जैविक आधार से प्रारम्भ करते हैं और सामाजिक वातावरण में बड़े होते हैं। इन तथ्यों के आधार पर ही यह प्रश्न उठते हैं कि व्यक्तियों के शारीरिक तथा मानसिक गुणों में पाई जाने वाली समानता को कौन–कौन से तत्व प्रभावित करते हैं जो उन्हें एक दूसरे से अलग करते हैं । इन प्रश्नों के आधार पर ही विकास के संदर्भ में कई वर्षों से कई मतों पर बहस चल रही है जिनमें से अहम मत निम्नांकित हैं–

- विकास के संदर्भ में आनुवांशिकता, परिवेश एंव पालन–पोषण का क्या–क्या योगदान है?
- विकास एक धीमी और निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है अथवा अचानक होने वाले तीव्र परिवर्तन?

परिवेश एंव पालन पोषण से विकास किस तरह प्रभावित होता है, उसे हम विभिन्न मनोवैज्ञानिकों द्वारा दिए गए तर्कों व इस पर हुए अध्ययनों से समझने का प्रयास करते हैं। आनुवांशिकता के पक्षधर इस बात पर जोर देते हैं कि विकास में आनुवांशिक कारक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। आनुवांशिक कारकों का अर्थ है कि ''व्यक्ति में माता–पिता से प्राप्त विशेषताओं की उसके व्यक्तित्व एवं व्यवहार में भूमिका या योगदान है।'' जैसे आपने कई बार अपने आस–पास के लोगों से यह कहते सुना होगा कि अमुक लड़की बहुत बुद्धिमान है क्योंकि उसके परिवार में सभी बहुत बुद्धिमान हैं। यदि हम इस पक्ष को मानें तो बच्चे किन्हीं क्षमताओं को लेकर पैदा होते हैं। जैसे– देखने, सुनने, स्वाद, सूंघने, मांसपेशियों पर नियंत्रण

आदि ये क्षमताएं स्पष्ट दिखाई देती हैं। साथ ही कुछ ऐसी क्षमताएं भी होती है जो सीखने तथा परिवेश के साथ अन्तःक्रिया कर संसार को समझने में मदद करती हैं। इस बात को हम एक उदाहरण से समझने की कोशिश करते हैं। एक शिशु अपनी प्रारम्भिक अवस्था में विभिन्न भाषा ध्वनियों जैसे बा/पा, रा/ला में अन्तर कर पाता है तथा किसी भी भाषा को बोलने में जो स्वर और व्यंजन काम में आते हैं उन्हें भी वह प्रयोग में ले पाता है। इसी तरह वाक्यों की संरचना भी समझते हैं और उसे सही क्रम में बोलने लगते हैं। मनोवैज्ञानिकों का मानना है कि बच्चों में जन्म से ही कुछ ऐसी क्षमताएं पाई जाती हैं जो उन्हें भाषा सीखने में मदद करती हैं। अगर ये क्षमताएं नहीं होती तो बच्चा इतनी जल्दी व अच्छे तरीके से भाषा के नियम जो जटिल हैं, नहीं सीख पाता।

बच्चों के विकास में परिवेश की भूमिका को प्रमुखता देनेवाले मनोवैज्ञानिकों का मानना है कि विकास में परिवेश (पालन–पोषण के तरीके, प्रेमपूर्ण रिश्ते, आहार, परिवार, स्कूल, मित्र, स्वास्थ्य की देखभाल) ही समस्त नए प्रकार के सीखे गए व्यवहार, क्रियाओं और कौशलों के लिए उत्तरदायी होता है। भाषा, आदतें, रूचियां, परम्पराएं, कौशलों एवं अन्य योग्यताओं का विकास परिवेश से ही होता है। उदाहरण के तौर पर कई बार यह कहा जाता है कि वह बहुत दब्बु या अंतर्मुखी है क्योंकि इसका पालन पोषण इसी माहौल में हुआ है। आनुवांशिक संरचना के बावजूद बिहार की किसी गाँव में पला हुआ बच्चा और बिहार के किसी शहर में पला हुआ बच्चा दोनों के कौशल संसार के बारे में सोचने के ढंग और लोगों के साथ व्यवहार करने के तरीकों में काफी फर्क होने की संभावना है।

जैसा कि हमने ऊपर पढ़ा बच्चे किन्हीं क्षमताओं को लेकर पैदा होते हैं और इनके होने से वे अपेक्षित समय पर परिपक्वता को प्राप्त कर लेते हैं। लेकिन सिर्फ ऐसा ही होता तो हम परिवेश में होने वाले बदलावों के प्रति सामंजस्य स्थापित नहीं कर पाते। यदि इसे दूसरे पक्ष के नजरिए से देखें यानि कि प्रकृति पर हम बहुत ज्यादा निर्भर न हों तो हम परिवेश में होने वाले विभिन्न परिवर्तनों के साथ आसानी से सामंजस्य स्थापित कर पाएंगे। चूंकि मानव परिवेश में बहुत ही भिन्नताएं एवं जटिलताएं होती है इसलिए हमें यह समझना होगा कि दोनों ही कारक हमारे लिये महत्वपूर्ण हैं।

बच्चों के विकास पर उसकी जन्म जात विशेषताओं अर्थात आनुवांशिकता/प्रकृति का प्रभाव पड़ता है अथवा जन्म के बाद उसको

मिलने वाले वातावरण का या पोषण का। वास्तव में देखा जाए तो आनुवांशिकता और वातावरण दोनो ही परस्पर एक दूसरे के पूरक हैं, दोनो का महत्व सापेक्षिक है। बच्चे के व्यक्तित्व का निर्माण किसी एक शक्ति के द्वारा बिलकुल सम्भव नहीं। वह तो वंश परम्परा एवं वातावरण दोनो के सहयोग से ही विकसित हो सकता है। वुडवर्थ के अनुसार वांशानुक्रम व वातावरण का संबमध बीज और धरती के समान है। यदि बीज खराब व धरती अच्छी हो या धरती खराब व बीज अच्छा हो तो उत्तम खेती असम्भव है। अच्छी पैदावार के लिए दोनो का ही उत्तम होना अनिवार्य है।

एक और मुद्दा जिस पर कई बरसों से बहस चल रही है वो यह कि विकास को निरंतरता व चरणबद्ध के तौर पर समझा जाए या आकस्मिक तौर पर हानेवाले किसी परिवर्तन के रूप में। जो निरंतरता के पक्षधर है उनका यह मानना है कि विकास एक निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है इसमें धीरे–धीरे व्यवहार, कौशलों और ज्ञान का संग्रहण (बबनउनसंजपवद) होता है इसमें विकास बहुत ही सरल एवं क्रमिक होता है जिसमें कोई भी बदलाव पुरानी क्षमताओं के आधार पर होता है। जैसे कि ''किसी बच्चे का पहला शब्द बोलना'' देखने में एक अचानक होने वाली घटना लगती है। परन्तु वह वास्तव में हफ्ता और महीनों हो रहे विकास और अभ्यास का परिणाम होता है। किशोरावस्था का आगमन जो एक अन्य अचानक ढंग से होने वाली घटना प्रतीत होती है। वास्तव में कई वर्षों से चल रही प्रक्रिया होती है।

इसके विपरीत जो दूसरे मत के पक्षधर है वे विकास को चरण आधारित मानते हैं इनका मानना है कि व्यवहार या कौशल में परिवर्तन भिन्न चरणों में गुणात्मक रूप से होता है ना कि मात्रात्मक रूप में और नए व्यवहार कौशलों एवं ज्ञान का सीखना अचानक से हो जाता है। विकास की अवस्था इसका प्रमुख आधार है। उदाहरण – पियाजे के अनुसार 7 से 11 साल के बच्चे का सोचना मूर्तरूप से होता है। इसके विपरीत किशोरावस्था में सोचना अमूर्त रूप से होता है।

सिगलर (1998) ने दोनों मत पर अपनी प्रतिक्रिया देते हुए कहा कि विकास की प्रक्रिया निरंतर या झटकों से होगी वह इस बात पर निर्भर करता है कि हम विकास को किस रूप में देखते है। उदाहरण के तौर पर जब हम व्यवहार में आने वाले परिवर्तनों को बड़े अंतराल में (जैसा कि वर्षों में) या फिर विभिन्न उम्र के बच्चों में जैसे कि 4 साल और 8 साल। तब ऐसी

स्थितियों में विकास विच्छिन्न लगेगा/चरणों में लगेगा। ऐसे ही यदि हम व्यवहार में आने वाले परिवर्तनों को छोटे–छोटे अंतराल में देखते हैं तो हमें विकास निरंतर प्रक्रिया लगेगा।

गतिविधि

निम्नलिखित शीषर्कों पर अपने अध्ययन केन्द्र पर एक परिचर्चा का आयोजन करें जिसमें दो समूह हों, एक पक्ष और दूसरा विपक्ष। दोनों समूह अपने–अपने तर्कों को प्रस्तुत करें :

- विकास में आनुवांशिकता की प्रमुख भूमिका होती है।
- विकास में परिवेश एंव पालन–पोषण की प्रमूख भूमिका होती है।
- विकास एक निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है।
- विकास अचानक से होने वाला तीव्र बदलाव है।

1.4.2 विकास के विभिन्न आयाम

अक्सर, हम या हमारे बड़े जाने–अनजाने एक बच्चे की तुलना अन्य बच्चों के साथ करते रहते हैं। कई बार आपने अपने आस–पड़ोस के लोगों को यह भी कहते सुना होगा की फ़लाना बच्चा पढ़ने में कितना होशियार है, फ़लाना बच्चा कितना व्यवहार–कुशल है, इत्यादि, और इस आधार पर किसी अन्य बच्चे को भी वैसा ही बनने के लिए प्रेरित भी करते रहते हैं। पर क्या इस दौरान हम यह समझते हैं कि हर बच्चा अपने आप में अलग है, उसकी अपनी कुछ विशिष्ट योग्यताएँ व क्षमतायें होती हैं। बाल व्यवहार कई प्रकार के होते है, उनके विविध आयाम होते हैं तथा उन व्यवहारों की अपनी अलग विशेषताएं होती है। कभी–कभी कुछ बाल व्यवहार इतने विशिष्ट होते हैं कि उनको तुरन्त समझना मुश्किल होता है। माता–पिता या अभिभावक बच्चों के किसी व्यवहार को एक स्वाभाविक प्रक्रिया मानते हैं परन्तु एक शिक्षक को बच्चों के उन व्यवहारों के विकास को समग्रता में

समझना आवश्यक है। इसी के अंतर्गत इस खण्ड में बाल विकास के प्रमुख आयामों को दिया गया है।

यह स्पष्ट है कि विकास का अर्थ केवल शरीर के अंग प्रत्यगों का बढ़कर एक निश्चित आकार लेना ही नहीं अपितु इसमें शारीरिक विकास के साथ–साथ संवेगात्मक, नैतिक, संज्ञानात्मक व सामाजिक विकास जैसे परिवर्तन भी शामिल हैं, यथा– रहन–सहन में, भाषा विकास में, अनुभूति और सोचने के तौर तरीकों में। इस प्रकार विकास, परिवर्तन की समग्र प्रक्रिया है। इसमें विकास के विभिन्न पहलूओं में परस्पर सम्बन्ध भी दिखाई देता है। उदाहरण के लिए– 13–14 साल के बच्चों के शरीर में जो भौतिक और जैविक परिवर्तन होते हैं उसका सम्बंध उसके संज्ञानात्मक, सामाजिक और संवेगात्मक विकास के साथ भी होता है। आईए विकास के कुछ प्रमुख आयामों से परिचित होते हैं। इन आयामों के विषय में विस्तृत चर्चा आगे के इकाईयों में दी गई है।

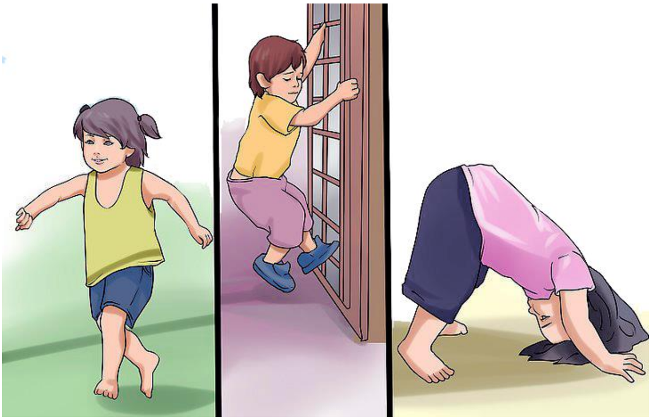

- **शारीरिक विकास –**

  बच्चे के सम्पूर्ण विकास का एक महत्वपूर्ण पहलू है–शारीरिक विकास। बच्चे के शारीरिक विकास का उसके व्यक्तित्व विकास में महत्वपूर्ण भूमिका है। कहा गया है कि 'स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मन निवास करता है'। बच्चे के विकास की प्रक्रिया गर्भाधान से ही प्रारम्भ हो जाती है और वह भ्रूण से गर्भस्थ शिशु के रुप में

परिपक्वता की ओर बढ़ने लगती है। इस प्रकार शारीरिक वृद्धि एक निरन्तर कमबद्ध प्रक्रिया से होती रहती है। प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रुप से बच्चे का शारीरिक विकास यह तय करता है कि उसमें किस प्रकार के कार्यों को करने की क्षमता अन्तर्निहित है यथा–अपने साथियों के साथ खेलकूद की समस्त गतिविधियों में भाग लेने की क्षमता शारीरिक विकास से अत्यधिक सहसम्बन्धित है। बच्चे का शैक्षिक विकास और व्यावहारिक ज्ञान उसके शारीरिक एवं गामक विकास से प्रभावित होता है। शारीरिक एवं मनोगत्यात्मक विकास परस्पर सम्बन्धित हैं। शारीरिक विकास का तात्पर्य सिर्फ शरीर के स्वस्थ होने तक ही सीमित नही है बल्कि इसका विशेष अर्थ है अपने शरीर व स्वास्थ्य के प्रति सज होना। प्रत्येक बच्चा शारीरिक रूप से दूसरे बच्चे से भिन्न होता है। बच्चे की इस विभिन्नता के कारणों को समझने पर शिक्षक बच्चों के साथ अधिक संवेदनशीलता से काम कर सकता है।

- **संवेगात्मक विकास –**

बच्चें मे सम्पूर्ण विकास में उसके संवेगात्मक विकास का भी महत्वपूर्ण स्थान है। जन्म के पश्चात बच्चा अपने परिवार के सम्पर्क में आता है। परिवार द्वारा लालन–पालन के दोरान उसको स्नेह व अपनापन मिलता है और इस अपनेपन से उसके अन्दर सुरक्षा की भावना पैदा होती है। मां की गोद में बच्चा स्वयं को सुरक्षित महसूस करता है। फलस्वरूप उसमें इस प्रकार सुरक्षा की भावना जन्म लेती है। भावनाओं का प्रकटीकरण संवेगों द्वारा होता है जैसे–मां को देखकर मुस्कुराना व अन्जान को देखकर रोना, खिलौना देने पर बच्चे का हंसना और खिलौना छीन लेने पर उसका रोना। आयु एवं अनुभव के साथ–साथ संवेगों की आवृत्ति में भी अन्तर दिखाई देता है। संवेगात्मक विकास का संबंध सिर्फ परिवार तक ही सीमित नहीं है बल्कि बच्चे में संवेग का विकास विद्यालयी परिवेश में भी होता रहता है और उसमें शिक्षक की विशेष भूमिका होती है।

- **नैतिक विकास –**

नैतिक विकास का सामान्य अर्थ सही या गलत का विश्लेषण करने की क्षमता के विकास से है। हमारी सोच, व्यवहार और भावनाओं

में सही या गलत का बदलाव नैतिक विकास में आता है। जैसे– एक व्यक्ति नैतिक निर्णय लेते समय कौन से तर्क या वितर्कों को ध्यान में रखता है? व्यक्ति नैतिक परिस्थितियों में कैसा व्यवहार करता है? नैतिक मुद्दों के बारे में लोग क्या सोचते हैं? क्या है जो एक व्यक्ति के नैतिक व्यक्तित्व को बनाने के लिए जिम्मेदार होता है? बच्चों में नैतिकता (morality) आरंभ से ही देखने को मिलती है। एक शिक्षक के लिए बच्चों में होने वाले नैतिक विकास की प्रक्रिया को समझना आवश्यक है ताकि उनके विद्यालयी अवधि के दौरान उनमें अपेक्षित गुणों का विकास किया जा सके।

- **संज्ञानात्मक विकास –**

एक शिक्षक या शिक्षिका के रूप में क्या कभी आपने यह जानने कि कोशिश की है कि बच्चे कैसे सोचते हैं, कैसे वह संसार का अनुभव करते है और किस प्रकार उसके मन में विचार जन्म लेते हैं ? हम प्रायः देखते हैं कि बच्चे अनजान वस्तुओं, व्यक्तियों, स्थितियों के बारे में समझने का प्रयास करते हैं। कक्षा में आपने यह भी महसूस किया होगा कि विभिन्न आयु–वर्ग के बच्चे एक ही प्रश्न का भिन्न–भिन्न उत्तर देते हैं। इन प्रश्नों को समझने के लिए उनके तरीके भी अलग–अलग होते हैं और उनके द्वारा दिये गए तर्क भी। निश्चित रूप से ऐसा इसलिए होता है क्योंकि बच्चों में आयु के साथ–साथ उसकी मानसिक शक्तियां और मानसिक प्रक्रियाएं विकसित होती हैं जिसे हम संज्ञानात्मक विकास कहते हैं। सामान्य अर्थ में संज्ञानात्मक विकास तार्किक व नवीन विचारों के अर्थ समझना एवं समस्या समाधान जैसे मानसिक व बौद्धिक प्रक्रिया का क्रमिक विकास है। संज्ञानात्मक योग्यता में वृद्धि के कारण ही बच्चों के व्यवहार में समय के साथ परिवर्तन आता रहता है। वातावरण के साथ समायोजन स्थापित करने में भी संज्ञान की भूमिका महत्वपूर्ण होती है।

- **सामाजिक विकास –**

मानव एक सामाजिक प्राणी है। जन्मोपरान्त शिशु का शारीरिक एवं मानसिक विकास उत्तरोतर होता जाता है। माता–पिता, भाई–बहन, संगी–साथियों एवं सामाजिक संस्थाओं के प्रभाव से उसका

सामाजीकरण होता है, जिसके फलस्वरूप उसका सामाजिक विकास होता है। यह विकास स्थायी न होकर समय एवं परिस्थितियों के अनुरूप परिवर्तित होता रहता है। इस प्रकार सामाजिक विकास का अभिप्राय समाज में प्राप्त किये जानेवाले अनुभवों के अनुरूप बच्चों में होने वाले विकास से है।

वीडियो देखने के लिए कृपया नीचे दिए गए लिंक पर क्लिक करें या दिए गए क्यूआर कोड को स्कैन करें

https://www.youtube.com/watch?v=TRF27F2bn-A

1.4.3 बाल विकास को प्रभावित करनेवाले कारक

विकास को प्रभावित करने वाले प्रमुख कारकों के रूप में शारीरिक, सामाजिक, सांस्कृतिक कारक पहचाने जा सकते हैं। सबसे पहले यदि शारीरिक कारकों की बात करें तो जन्म से पूर्व की परिस्थितियाँ जैसे माँ का शारीरिक स्वास्थ्य, पौष्टिक भोजन इत्यादि गर्भ में पल रहे बच्चे के तात्कालिक एवं बाद के वृद्धि एवं विकास पर महत्वपूर्ण प्रभाव डालते हैं। जैसे– गर्भ काल के दौरान अगर गर्भवती को आयोडीन की कमी हो जाए तो बच्चे का शारीरिक एवं मानसिक विकास अवरूद्ध हो जाता है। ठीक इसी प्रकार बच्चे के जन्म के समय की परिस्थिति जैसे बच्चे को ऑक्सीजन की कमी हो जाना, उपकरणों का प्रयोग, सफाई की कमी इत्यादि भी बच्चे

के विकास को प्रभावित करते हैं। आंतरिक ग्रन्थियों की क्रियाएं भी बच्चों के वृद्धि एवं विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, जैसे– थाइराइड, पैराथाइराइड, पीयूष, थाइमस, ऐड्रीनल आदि। इनकी अति सक्रियता अथवा अल्प सक्रियता बच्चे के शारीरिक एवं मानसिक विकास को प्रभावित करते हैं। जैसे पीयूष ग्रंथि के अल्प स्त्राव से बच्चे के कद में वृद्धि नहीं होती है। साथ ही, बच्चे अपने माता–पिता एवं अन्य पूर्वजों के कई गुणों को लिए होते हैं, जैसे– रंग–रूप, आकृति, मानसिक योग्यताएं इत्यादि। ये जन्मजात गुण एक संभावना के रूप में होते हैं और परिस्थितियों के अनुसार बच्चे के विकास को प्रभावित करते हैं।

भोजन का प्रकार भी बच्चे के शारीरिक एवं मानसिक विकास को प्रभावित करते है। कहा भी गया है–''एक स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मस्तिष्क का निवास होता है''। इसलिए बच्चे के समुचित विकास के लिए पौष्टिक भोजन अनिवार्य है। अगर उन्हें पौष्टिक भोजन नहीं मिले तो वे कुपोषित हो जाएगें और उनका शारीरिक एवं मानसिक विकास अवरूद्ध हो जाएगा। जैसे–सूर्य के प्रकाश से विटामिन डी की प्राप्ति होती है। अगर इसकी कमी हो जाती है तो बच्चे की हड्डियाँ मजबूत नहीं हो पाती है।

बच्चे का लिंग भी उसके जन्म से लेकर आगे तक होने वाले विकास के सारे क्रम को प्रभावित करता है। माता–पिता की बच्चे के प्रति होने वाली अभिवृत्ति पर भी लिंग का प्रभाव पड़ता है जिस कारण बच्चे एवं बच्चियों में अंतर किया जाता है। सामाजिक–सांस्कृतिक के कारण बच्चा लिंग की दृष्टि से व्यवहार करने लगता है तभी उसे सामाजिक स्वीकृति भी मिलती है। और जो बच्चा उपर्युक्त व्यवहार सीखने में असफल रहता है उसे आलोचना का सामना करना पड़ता है। जैसे–एक ही परिवार में अगर लड़का और लड़की दोनों है तो लड़के को अपेक्षाकृत अधिक प्यार, दुलार, स्वतंत्रता दी जाती है। इसका परिणाम यह होता है कि किसी न किसी स्तर पर लड़की के व्यक्तित्व का विकास प्रभावित होता है और उसमें कुछ व्यक्तित्व दोष जैसे–कुण्ठा, आत्म–विश्वास में कमी, भय, इत्यादि घर कर जाता है।

साथ ही, बच्चों के विकास की दिशा व दशा निर्धारित करने में परिवार, शिक्षक एवं जन–संचार की भूमिका काफी महत्वपूर्ण होती है। चाहे बच्चों का शारीरिक विकास हो या मानसिक, संवेगात्मक विकास हो या सामाजिक, परिवार ही वह पहली इकाई है जहाँ विकास के सभी आयामों की नींव

पड़ती है। बच्चों को पौष्टिक भोजन एवं स्वास्थ्य सम्बंधित सुविधायें देने की जिम्मेदारी परिवार की ही होती है जो कि बच्चों के शारीरिक विकास पर महत्वपूर्ण प्रभाव डालती है। परिवार में ही बच्चों को नए–नए शब्दों को सीखने का मौका मिलता है, जिससे उनका शब्द–भंडार विकसित हो जाता है। अगर परिवार शिक्षित हो तो बच्चों का संज्ञानात्मक विकास भी समुचित रूप से होता है। केवल इतना हीं नहीं पारिवारिक वातावरण में आत्मविश्वास का विकास होता है और प्रेरणाओं, मूल्यों, तथा विश्वासों का निर्माण होता है।

बच्चे अपने दिन का अधिकतर समय परिवार के अतिरिक्त कहीं और व्यतीत करते हैं तो वह है स्कूल, जहाँ वे लगातार शिक्षकों के संपर्क में रहते हैं। शिक्षक न केवल बच्चों का संज्ञानात्मक विकास करता है, बल्कि विकास के अन्य आयामों को भी विकसित करने में सहायक होता है। विभिन्न खेलों एवं व्यायाम द्वारा बच्चों का शारीरिक विकास करते हैं। कक्षा के भीतर एवं बाहर समुचित वातावरण का निर्माण कर बच्चों के सामाजिक–संवेगात्मक विकास को भी बढ़ावा देते हैं। इसलिए बच्चों के व्यतिव के सर्वांगीण विकास में शिक्षकों की भूमिका काफी महत्वपूर्ण हो जाती है।

वर्तमान समय में जन–संचार माध्यमों जैसे– टेलीविजन, रेडियो, अखबार, पत्रिकाएँ, आदि का प्रभाव विकास के सभी पहलुओं पर देखा जा सकता है। परन्तु प्रश्न यह है कि 'क्या ये माध्यम सदैव हीं बच्चों के विकास पर साकारात्मक प्रभाव डालते हैं?' अगर देखा जाये तो जन–संचार के ये माध्यम बच्चों के विकास पर साकारात्मक एवं नाकारात्मक दोनों ही तरह के प्रभाव डालते हैं। उदाहरण के तौर पर टेलीविजन पर अनेक प्रकार के कार्यक्रम प्रसारित किये जाते हैं जैसे– मनोरंजक कार्यक्रम, सूचना एवं ज्ञान आधारित कार्यक्रम, सामाजिक अच्छाईयों तथा बुराईयों पर आधारित कार्यक्रम, ध ार्मिक एवं सांस्कृतिक कार्यक्रम, आदि। जहाँ एक ओर इन कार्यक्रमों के माध्यम से बच्चों का अपने तथा अपने आस–पास की चीजों के प्रति समझ बढ़ती हैं वहीं दूसरी ओर कभी–कभी ये कार्यक्रम उन्हें संकीर्णता की ओर भी ले जाते हैं। इसलिए यह आवश्यक है कि बच्चों के विकास में जन–संचार माध्यमों का प्रयोग न्यायसंगत रूप से किया जाये।

गतिविधि

अपने विद्यालय के किसी एक बच्चे के विकास के विभिन्न आयामों तथा उसे प्रभावित करनेवाले कारकों का केस–स्टडी करें। इसकी रिपोर्ट बनाएं तथा अध्ययन केन्द्र पर प्रस्तुत करें।

1.5 सीखना क्या है

सीखना किसे कहेंगे, यह एक जटिज प्रश्न है। इसके बारे में सामान्य समझ के साथ–साथ निरंतर कई सिद्धांत आते रहे हैं और जिन्होंने हमारे सीखने के ढ़ग को प्रभावित किया। इस खण्ड में हम सीखने की अवधारणा से सम्बंधित तीन प्रमुख बिन्दुओं से अवगत होंगे। पहला, यह कि सीखने और बाल विकास के बीच के जुड़ाव को कैसे समझा जाए। दूसरे बिन्दु के अंतर्गत सीखने से सम्बंधित कुछ सामान्य धारणाओं की बात करेंगें कि बच्चे कैसे सीखते हैं। और, तीसरा बिन्दु सीखने की अवधारणा के ऐतिहासिक बदलाव का संक्षिप्त विवरण होगा।

वीडियो देखने के लिए कृपया नीचे दिए गए लिंक पर क्लिक करें या दिए गए क्यूआर कोड को स्कैन करें

https://www.youtube.com/watch?v=VEKDAplT1Fo

1.5.1 सीखने और बाल विकास में अंतर्सम्बंध

सीखने के विषय में एक प्रबल मत यह भी है कि सीखना और बाल विकास के बीच गहरा सम्बंध है। सामान्यतः बाल विकास को परिपक्वता के संदर्भ में समझा जाता है। परिपक्वता से आशय किसी भी काम को सीखने के लिए शारीरिक और मानसिक रूप से सक्षम होने से है। जैसे–शरीर की मांसपेशियों का परिपक्व होना। यदि बच्चे को लिखना सिखाना है तो इसके लिए उसके हाथ की मांसपेशियों का परिपक्व होना आवश्यक है। बैठना, चलना, बच्चे के दांत आना आदि क्रियाएं परिपक्वता के फलस्वरूप घटित होती हैं। आप ध्यान दीजिए इन सब कामों के लिए किसी भी प्रकार के विशेष प्रशिक्षण की आवश्यकता नहीं होती। परिपक्वता का सम्बंध आयु से भी है। जैसे – जैसे बच्चे की आयु बढ़ती है, बच्चों के अंग नए–नए व कठिन कामों के लिए तैयार होते जाते हैं। परिपक्वता का संबंध सीखने से भी है। किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व, व्यवहार या रूचियों में परिवर्तन परिपक्वता एवं सीखना दोनों के कारण होता है। दोनों साथ–साथ होते हैं तथा एक दूसरे को प्रभावित भी करते हैं। परिपक्वता एवं सीखना में जो अंतर्सम्बन्ध है उसे समझें तो कहा जा सकता है कि सभी व्यक्तियों में सीखने की क्षमता होती है, भले ही उसमें विभिन्नताएं हों। सीखने का एक क्रम होता है। व्यक्ति तब तक नहीं सीख पाता जब तक वह उसे सीखने के लिए तैयार न हो। परिपक्वता की दृष्टि से विकासात्मक तत्परता इस बात को निर्धारित करती है कि सीखना कब होना चाहिए? जैसे–बच्चे लिखना तब तक नहीं सीख सकते जब तक उसका मनोगत्यात्मक विकास (साईको–मोटर डेवेलपमेन्ट) न हुआ हो। परिपक्वता के कारण ही बच्चे के काम करने के तरीकों व क्षमताओं में भी गुणात्मक परिवर्तन आते हैं। अतः यह कहा जा सकता है कि परिपक्वता एवं सीखने के द्वारा बच्चे के विकास के सभी क्षेत्रों यथा– शारीरिक, संज्ञानात्मक, संवेगात्मक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक का पूर्णरूपेण विकास होता है।

परिपक्वता की बात करें तो आनुवांशिक गुण तथा बच्चे को मिलने वाला परिवेश भी इसको प्रभावित करते हैं। बच्चे को जन्म उपरान्त मिलनेवाला पोषण उसकी शारीरिक परिपक्वता को प्रभावित करता है। उदाहरण के तौर पर, अनुवांशिकता से प्राप्त रोगों (जैसे मधुमेह, हीमोफिलिया, वर्णान्धता आदि) का भी बच्चे की परिपक्वता पर प्रभाव पड़ता है। इन सब का बच्चे की सीखने की क्षमता पर भी अनुकूल या प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इस प्रकार

स्पष्ट है कि सीखने व परिपक्वता में गहरा संबंध है तथा परिपक्वता सीखने की क्रिया को प्रभावित करती है। सामान्यतया यह माना जाता है कि सीखना और परिपक्वता परस्पर घनिष्ठ रूप से संबंधित हैं। हालांकि, सीखने के लिए परिपक्वता के पूर्वशर्त को कई मनोवैज्ञानिक सही नहीं मानते हैं। उनके अनुसार, सीखने के कारण परिपक्वता आती है।

वीडियो देखने के लिए कृपया नीचे दिए गए लिंक पर क्लिक करें या दिए गए क्यूआर कोड को स्कैन करें

https://www.youtube.com/watch?v=mIyy-XKwjU0

गतिविधि

सीखने और परिपक्वता के मध्य सम्बंध को स्थापित करनेवाले उदाहरणों की चित्रात्मक सूची बनाएं।

1.5.2 बच्चे कैसे सीखते हैं: कुछ सामान्य धारणाएं

बच्चे कैसे सीखते हैं और सीखना किसे कहेंगे पर अलग–अलग नजरिए हैं। क्या सीखने का अर्थ एक ही तरह के सवालों का जवाब दे पाना है या नये सवालों का हल ढूँढ़ना? क्या वह ज्ञात तरीकों का उपयोग कर पाना है या नये तरीके ईजाद का पाना? इस तरह के प्रश्नों पर और विचार बाद में करेंगे किन्तु यह स्पष्ट है कि सीखने सिखाने की सामग्री व उसकी प्रक्रिया इस बात से प्रभावित होगी। वह इस बात से भी प्रभावित होगी की हम सीखने वाली को किस तरह से देखते हैं। क्या सीखने वाली औरों की नकल करके सीखती है? क्या हर बच्चा/बच्ची खाली स्लेट के समान होती है? इस पर विचार के बाद ही हम बच्चों की क्रियाओं को बेहतर ढ़ंग से देख पाएँगे व समझ पाएँगे।

जन्म लेते ही बच्चे अपने इर्द–गिर्द की दुनिया को महसूस करने लगते हैं और धीरे–धीरे उसके बारे में अपनी एक समझ बनाने लगते हैं। कुछ समय बाद वे लोगों और चीजों को पहचानना शुरू करते हैं। साथ ही वे अपने आसपास के माहौल से ज्यादा तालमेल बैठाने लगते हैं; देखकर, छूकर, सुनकर, चखकर और सूंघकर चीजों को महसूस करने लगते हैं। जब नन्हीं बच्ची जमीन पर चलते हुए उंगली से धूल उठाती है, या किसी छेद में उंगली डालती है, तब उसके दिमाग में क्या चल रहा होता है? क्या वह मन में उठेसवालों के जवाब पाने की कोशिश नहीं कर रही होती? इस बारे में अपनी एक समझ बना कर क्या वह उसको परख नहीं रही होती?

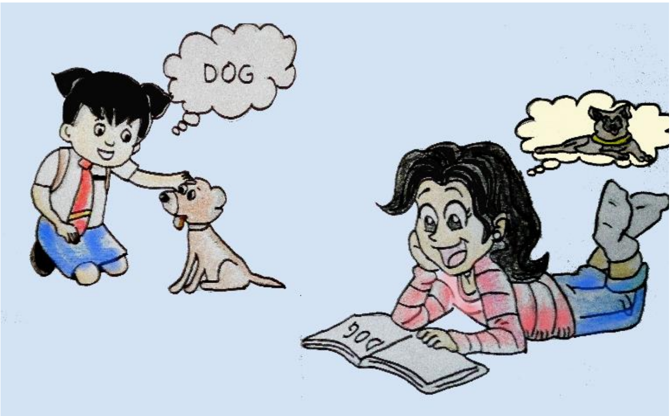

बच्चे अनुभव से सीखते हैं

बच्चे चीजों पर तरह–तरह के प्रयोग करके उनके बारे में सीखते हैं। वे चीजों को उठाते हैं, फेंकते हैं, जोड़–तोड़ करते हैं और इस तरह उनके बारे में समझहासिल करते हैं। जाँच पड़ताल की बच्चों की स्वाभाविक इच्छा उन्हें उन चीजों के अलग–अलग पहलुओं को समझने में मदद देती है। वे चीजों के आकार, आकृति, अन्य गुणों के साथ–साथ उनके रखने की जगह आदि के बारे में सीखते हैं। वे इस तरह के स्थानिक समझ से संबंधित गुण जैसे कौन सी चीज किस चीज के नीचे रखी जा सकती है, या उनके खिलौने डिब्बों में कैसे आ सकती है भी सीखते हैं।

चीजों को अनुभव करते हुए और उनके बारे में सोचते हुए बच्चे और भी बहुत कुछ कर रहे होते हैं। खेलकूद और बड़ों से मेलजोल के दौरान बच्चों का कई तरह की अवधारणाओं और कौशलों से वास्ता

पड़ता है। और इन पर वे तरह–तरह से महारत हासिल करने की कोशिश करते हैं। जैसे कि– 'आधे' का मतलब समझाने के लिए अगर बच्चों को तरह–तरह की चीज आधे में बांटने को कहा जाये तो वे धीरे–धीरे 'आधे' की अवधारणा की समझ बनाएंगे।

बच्चे बड़ों की नकल करके सीखते हैं?

बच्चे बड़ों की नकल करके सीखते हैं, यह एक सामान्य बात लगती है। बच्चे बड़ों को देखते–सुनते हैं इन अवलोकनों के आधार पर वे उसी तरह की क्रिया करने का प्रयास करते हैं।

माँ–बाप और अन्य बड़े लोग 'सही' व्यवहार या 'सही उत्तर' की तारीफ करते हैं, अन्यथा उन्हें दण्डित करते हैं। दण्ड इस रूप में भी हो सकता है कि शिक्षक उन्हें वह बात अपनी नोटबुक में बार–बार लिखने को कहे। बच्ची को वह उत्तर बार –बार तब तक दोहराना होता है, जब तक कि वह सवाल का सही उत्तर न देने लगे।

भाषा सीखने में भी बड़े लोग (माँ) क, ख .... जैसे सरल वर्णों को बोल – बोलकर बच्ची से नकल करवाती है और अभ्यास करवाती है। धीरे–धीरे बच्ची को सरल शब्द सुनाते हैं और उससे दोहराने को कहते हैं। जब वह इन शब्दों का इस्तेमाल करने लगती है तब उसे इसी प्रकार से सरल वाक्य बोलना सिखाते हैं।''

क्या बच्चे खाली स्लेट हैं?

बच्चों के बारे में अकसर यह धारणा होती है कि शिक्षक जो चाहे उन्हें बना सकता है, यह भी माना जाता है कि वे गीली मिट्टी के समान हैं और उन्हें जैसा चाहें वैसा आकार दे सकते हैं। शिक्षक में एक धारणा यह भी रही है कि बच्चे का दिमाग खाली स्लेट की तरह है और उन पर जो चाहे लिख सकते हैं। इस तरह की समझ के कई निहितार्थ हैं और ऐसा मानने वालों के कथनों में गहरे अन्तर्विरोध भी। आप क्या मानते हैं? क्या बच्चे गीली मिट्टी/खाली स्लेट के समान हैं? क्या वे वही सीखते हैं जो बड़े बताते हैं। क्या बच्चों को वह सब सिखाया जा सकता है जो भी हम चाहते हैं और उसी ढंग से सरल करके जैसा हम ठीक समझते हैं या फिर हम यह मानें कि बच्चे अपने अवलोकनों से और अपने निहायत क्रियाशील दिमागों का उपयोग करके ही काफी कुछ जानते हैं।

बच्चों को खाली स्लेट इसलिए कहा जाता है क्योंकि हम सिर्फ उन्हीं चीजों को उनमें देखना चाहते हैं जो वह स्वतः स्वाभाविक तौर से नहीं सीख सकते। हम वह सब जो जानते हैं को दरकिनार कर उनकी सिर्फ उन बातों में जाँच करते हैं जो पढ़ाई जाती हैं। हम उनकी ढेर सारी क्षमताओं व उपलब्धियों पर बिल्कुल ध्यान नहीं देते। यह विचित्र है कि हम अकसर बच्चों को सिर्फ वही सीखने तक सीमित रखना चाहते हैं जो हम सिखाना चाहें।

क्या बच्चे सीखने को उत्सुक हैं?

अकसर शिक्षक साथियों के साथ बात करते समय यह राय सामने आती है कि बच्चे सीखने की व्यक्ति इच्छा न होने के कारण पढ़ना ही नहीं चाहते

व मेहनत नहीं करते। इस कथन के बारे में सोचें तो कई पहलू सामने आते हैं। एक तो यह कि बच्चे कई चीजों में बहुत मेहनत करते हैं और करना चाहते हैं। वह यह किस में करना चाहते हैं इसका स्वरूप अलग–अलग होता है लेकिन जो वह करना चाहते हैं उसमें कड़ी मेहनत करने को वह तैयार होते हैं। यदि हम जो करवाना चाहते वे नहीं करना चाहते तो क्या इसमें बच्चों की गलती है? हममें से कितने लोग वह काम करेंगे जिसमें हमारी रूचि न हो? बच्चे हों या बड़े, हम सब किसी काम में तभी जुटते हैं जब वह हमें रूचिकर लगे। तो, किसी शिक्षक के लिए सबसे अहम् सवाल यह होगा कि "बच्चों को सीखने के लिए उत्साहित कैसे करें?"

"छोटू न मेरी सुनता है, न अपने शिक्षकों की। वह किसी बात को गम्भीरता से नहीं लेता। वह तो बस गिल्ली–डण्डा खेलना चाहता है।" कह रहे थे छोटू के पिता, जो बहुत ही नाराज थे। छोटू के पिता की तरह कितने सारे मां–बाप और शिक्षक मानते हैं कि बच्चे पढ़ाई में रूचि नहीं रखते। कितने सारे शिक्षक शिकायत करते हैं कि बच्चों को जबर्दस्ती कक्षा में बैठाना पड़ता है और ध्यान देने पर मजबूर करना पड़ता है। शिक्षक बताते हैं कि इसी रवैये की वजह से उन्हें एक ही बात बार–बार दोहरानी पड़ती है।

बच्चों को तभी सीखाया जा सकता है जब हमारा उनके सीखने के प्रति रवैया सकारात्मक हो और उनकी काबलियत पर भरोसा हो। हम सब की तरह बच्चे भी तभी सीखते हैं जब उन्हें अपने सीखने की क्षमता पर भरोसा होता है और वह अपने आप को काबिल समझते हैं। यदि ऐसा नहीं है तो बच्चा यही प्रयास करता रहेगा कि वह शिक्षक को खुश कैसे रखे और वह उनकी व अन्य व्यस्कों की नजरों में कमजोर साबित होने से कैसे बचे। शिक्षक बच्चों की कितनी कद्र करते हैं, कितनी इज्जत करते हैं और बच्चों के लिए उनका रवैया क्या है, इनका सीखने पर गहरा असर होता है। अगर बच्चों को यह मौका है कि वे क्यों 'सही' या 'गलत' हैं पर विमर्श कर सके व उन्हें सवाल पूछने तथा अपने संशयों को दूर करने का मौका हो तो उनका आत्मविष्वास बढ़ता हैं।

जो बच्चे इसी चिंता में रहते हैं कि उन्हें डांट पड़ेगी या होशियार बच्चों के साथ तुलना कर के उन्हें लताड़ा जाएगा, वे कक्षा में दब जाते हैं। वे कोशिश करते हैं कि या तो उन्हें सवालों के जवाब न देने पड़े या फिर ऐसा प्रदर्शित करते हैं कि उन्हें इस सब से कोई असर नहीं होता। कक्षा में हो रही सामान्य बातचीत में वे हिस्सा नहीं ले पाते और अपना कोई

महत्व नहीं स्थापित कर पाते। कम भागीदारी से वह निश्चित करना चाहते हैं कि पढ़ाई–लिखाई के मामले में वे प्रकाश में न आएं और सबके सामने कोई गलती न करें। उनकी शिक्षा में यह अवरोध बन जाता हैं। अगर हम ध्यान से सोचें तो हम पाएंगे कि आज ज्यादातर बच्चों की यही समस्या है। इसके चलते बहुत से बच्चे चुपचाप बैठे जो बताया जा रहा है उसके बारे में सोंचे बिना मशीनी ढंग से ही चीजों को करते जाते हैं। वे इसी कोशिश में रहते हैं कि कैसे उस उत्तर तक पहुँचे जो शिक्षक मान लेंगे। सही और गलत का कोई और मापदण्ड उनके लिए नहीं है।

इस तरह हम पाते हैं कि बच्चों के सीखने के कई धारणाओं से हम सहज रूप से अवगत हैं। इन धारणाओं में अंतर्निहित कई सैद्धांतिक मत भी हैं, जिनकी चर्चा हम इस विषय की कई इकाइयों में करेंगे।

गतिविधि

अपने समुदाय के कुछ लोगों से पूछें कि वे अपने बच्चों को कोई चीज कैसे सीखाते हैं? उनके जवाबों का संकलन करें तथा उनका विश्लेषण प्रस्तुत करें।

1.5.3 सीखना की अवधारणा का विकासः व्यवहारवाद से लेकर रचनावाद तक

सीखना किसे कहा जाए, इसका कोई एक जवाब नहीं है क्योंकि यदि इस अवधारणा के ऐतिहासिक विकास को देखें तो निरन्तर विभिन्न मनोवैज्ञानिकों एवं चिंतकों द्वारा प्रतिपादित सिद्धांतों ने सीखने को अलग–अलग प्रकार से व्याख्या की, जिनका प्रभाव विद्यालय में सीखने–सिखाने के कक्षायी प्रक्रिया पर भी गहराई से पड़ा। अतः शिक्षकों के लिए यह समझना महत्वपूर्ण है कि आखिर सीखने के सिद्धांतों का विकास कैसे हुआ और आज की कक्षा में उन सिद्धांतों का क्या स्वरूप दिखता है? इस संदर्भ में सीखने के व्यवहारवादी दृष्टिकोण से संज्ञानवादी दृष्टिकोण तक के विकास को समझना

आवश्यक है, जिसकी परिचयात्मक चर्चा इस खण्ड में की जा रही है। इनके बारे में आप आगे की इकाइयों में विस्तार से अध्ययन करेंगे।

सीखने की शुरूआती सैद्धांतिक अवधारणा व्यवहारवाद से प्रभावित है। उन्नसवीं सदी से ही व्यवहारवाद पर अध्ययन हो रहे थे जिसमें कई अध्ययन इस बात को लेकर थे कि लोगों के व्यवहार पर किन बातों का असर पड़ता है?,उसे किन तरीकों से नियंत्रित किया जा सकता है एवं अपेक्षित व्यवहार सिखाया जा सकता है? जैसे– भय पैदा कर के नियंत्रण करना, बार–बार अभ्यास करा कर सिखाना, अपेक्षित व्यवहार को पुरस्कार देकर प्रोत्साहित करना एवं अनापेक्षित व्यवहार को दण्ड देकर या अप्रसन्नता प्रकट करके निरूत्साहित करना आदि थे। इस तथ्य को प्रमाणित करने के लिए मानव के विचार और व्यवहार के नियम खोजने के प्रयास किये जाने लगे। इस स्थिति में मानव की निजी इच्छा, प्रेरणा, रचनात्मकता, भिन्नता, विचार शक्ति जैसी बातें गौण हो गई । क्योंकि ये न तो स्पष्टतया बाहरी तौर पर दिखती थी और न ही मापी जा सकती थी। कई बार अध्ययनों द्वारा यह भी सामने आया कि बच्चों में आवश्यक व्यवहार परिवर्तन कैसे करें? इस हेतु उन्हें दूसरों का अनुसरण करने को कहा जाता रहा है।

व्यवहारवादियों का बच्चों के सीखने के संदर्भ में मानना है कि बच्चे निरंतर अभ्यास द्वारा, रटकर, भय, पुरस्कार अथवा दण्ड से सीखते हैं। सीखने में बच्चों की सक्रिय भागीदारी नहीं मानी जाती। लेकिन शिक्षक जो चाहे सिखा सकता है। सन् 1913 में जॉन वाटसन अमेरिकन मनोवैज्ञानिक ने मन की संरचना एवं कार्यो के अध्ययन के स्थान पर व्यवहार के अध्ययन पर ज्यादा बल दिया। इन्होने बताया कि व्यवहार, विचार के फलस्वरूप उत्पन्न होता है उसका निरीक्षण भी किया जा सकता है और उसके सम्बन्ध में निर्णय भी लिया जा सकता है। इसी मान्यता को लेते हुए पॉवलव तथा स्किनर ने अपने प्रयोगों के आधार पर सीखने के व्यवहारवादी सिद्धांतों का प्रतिपादन किया। उनके सिद्धांतों को संक्षेप में आगे दिया जा रहा है। यहां व्यवहारवाद की मूल प्राकल्पनाओं के निम्नलिखित रूप से समझाया जा सकता है।

- व्यवहार में अनुभवों के कारण होने वाला परिवर्तन सीखना है।
- बच्चा जब सीखने की स्थिति में आता है तो खाली स्लेट के समान होता है।
- व्यवहारों का मापन संभव है।

- सीखने के नियमों का प्रजाति विशेष पर प्रभाव नहीं पड़ता।
- सीखने को आंतरिक कारकों की अपेक्षा बाह्य कारकों से अच्छी तरह समझा जा सकता है।

बीसवीं सदी के पूर्वाद्ध में व्यवहारवाद के उपरोक्त सिद्धांत की कड़ी आलोचना हुई और सीखने की प्रक्रिया को लेकर मानवीय सिद्धांत को प्रतिपादित किया गया जिसके अनुसार सीखने को मनुष्य के विशिष्ट क्षमताओं, आवश्यकताओं एवं परिस्थितियों के अनुसार माना गया। इसमें अब्राहम मैस्लो का 'मनुष्य की आवश्यकताओं का पदसोपान सिद्धांत महत्वपूर्ण है।

आगे बढ़े तो सूचना प्रसंस्करण मॉडल में सीखने की एक अलग व्याख्या को प्रस्तुत किया गया। सूचना प्रसंस्करण मॉडल में 'सीखनेवाले' को एक सक्रिय प्राणी के रूप में माना गया है, जो सूचनाओं पर विभिन्न प्रकार के आंतरिक कार्य (प्रोसेसिंग) को करके ज्ञान का निर्माण करता है। सूचना प्रसंस्करण मॉडल के अनुसार, सबसे पहले हम अपने वातावरण में उपस्थित उद्दीपनों से वांछित सूचनाएँ या आंकड़े प्राप्त करते हैं। फिर उनका मस्तिष्क में व्यवस्थापन करते हैं तथा आगे अपने प्रयोजन हेतु काम में लाने का प्रयत्न करते हैं।

सीखने के क्षेत्र में जीन पियाजे का सिद्धान्त एक अभूतपूर्व सिद्धांत माना गया है। उन्होंने बच्चों के चिंतन एवं तर्क के विकास पर बल डालकर संज्ञानात्मक विकास की व्याख्या की। बच्चों के साथ हुई चर्चाओं, छोटे स्तर पर किए गए प्रयोगों और अवलोकनों के आधार पर, पियाजे ने बताया कि बच्चे की सोच चार चरणों से होकर विकसित होती है। हर एक चरण में बच्चों के सोचने और तर्क करने में काफी अंतर आता है। पियाजे का मानना था कि एक चरण से गुजरने के बाद ही दूसरे चरण पर जाया जा सकता है। साथ ही उनका यह भी मानना था कि किसी भी जगह के बच्चे का संज्ञानात्मक विकास इन्हीं चरणों से होकर गुजरता है।

आगे, कई मनोवैज्ञानिकों ने यह समझने का प्रयास किया है कि किस तरह बच्चों का सामाजिक और सांस्कृतिक संदर्भ उनके सीखने व संज्ञान को प्रभावित करता है। इसमें मनोवैज्ञानिक, ऐल्बर्ट बेन्डुरा और लेव वायगोत्सकी द्वारा विकसित सिद्धांतों की प्रमुख भूमिका रही। दोनो मनोवैज्ञानिकों ने संज्ञानात्मक विकास में समाज की भूमिका को महत्वपूर्ण समझा है। बेन्डुरा

ने अवलोकन और अनुकरण से बच्चे कैसे सीखते हैं इसका गहरा अध्ययन किया है। उनका मानना है कि अनुकरण के दौरान हम कई संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं का उपयोग करते है। जिन व्यक्तियों का हम अनुकरण करते हैं उनका हमारे व्यवहार पर गहरा असर पड़ता है। उनका यह भी मानना है कि हमारी स्वयं की क्षमताओं के बारे में हमारी सोच हमारे सीखने पर गहरा प्रभाव डालती है। वायगोतस्की ने अपने सिद्धांत में बच्चों की सोच और व्यवहार पर समाज और संस्कृति की परस्पर अंतःक्रिया के प्रभाव का अध्ययन किया है। सामाजिक अंतःक्रिया द्वारा ही संज्ञानात्मक प्रक्रियाएँ (भाषा, विचार, तर्क) विकसित होती हैं। उनके अनुसार सीखना काफी हद तक बच्चों और उनसे सक्षम व्यक्तियों की मध्यस्थता के कारण होता है जैसे कि शिक्षक, माता–पिता, मित्रों आदि। इस प्रकार सीखने की अवधारणा को लेकर कई मतों का विकास हुआ।

वीडियो देखने के लिए कृपया नीचे दिए गए लिंक पर क्लिक करें या दिए गए क्यूआर कोड को स्कैन करें

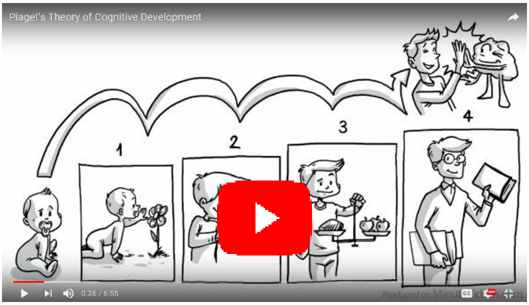

https://www.youtube.com/watch?v=IhcgYgx7aAA

गतिविधि

- आपक अपने समुदाय में सीखने–सिखाने के प्रचलित तरीकों के बारे में पता लगाएं और यह
- विश्लेषण करें कि उनकी तह में किस प्रकार का मनोवैज्ञानिक सिद्धांत है?
- सीखने के विभिन्न सिद्धांतों के प्रमुख बिन्दुओं को डाईग्राम के माध्यम से प्रदर्शित करें।
- क्या सीखने के विभिनन सिद्धांतों के बारे में आपके विद्यालय के अन्य शिक्षक अवगत है, इसका पता लगाएं।

1.6 समेकन

इस इकाई में हमने यह समझा कि बच्चा एक चेतन एवं विकासशील प्राणी है। उसे लेकर जो कुछ हमारा ज्ञान है वह प्रभावशाली हो सकता है परन्तु बच्चे के सन्दर्भ में जो कुछ हम नहीं जानते वह भी समझने योग्य है। प्रत्येक नई परिस्थिति बच्चे के विकास को लेकर नए प्रश्नों को जन्म देती है। एक शिक्षक के रूप में यह अपेक्षा है कि बच्चों की इन आवश्यकताओं और समस्याओं को समझें तथा उनके संतुलित व्यक्तित्व के विकास में सहयोग दें। साथ ही, हमने सीखने की अवधारणा का परिपक्वता से सम्बंध पर भी चर्चा की और अंत में सीखने की अवधारणा के ऐतिहासिक विकास में व्यवहारवाद से लेकर सामाजिक–सांस्कृतिक सिद्धांत के भिन्न–भिन्न मतों से परिचित हुए।

इकाई की विस्तृत समझ के लिए निम्नलिखित ई–संसाधनों का भी उपयोग जरूर करें:

- इकाई के विषयवस्तु पर निर्मित आई.सी.टी. /ऑडियो–विजुअल/एनिमेशन सामग्री।
- प्रारम्भिक स्तर की पाठ्यपुस्तकों पर आधारित डिजिटल सामग्री, जो इस इकाई से सम्बंधित हों।
- इकाई के विषयवस्तु से सम्बंधित फिल्म, डॉक्युमेंटरी, प्रेजेन्टेशन, वेब–रिसोर्स, ओपेन रिसोर्स, आदि।

1.7 प्रदत्त कार्य

1. बाल विकास की जानकारी एक शिक्षक के लिए क्यों आवश्यक है? तर्क प्रस्तुत करें।
2. बच्चों के विकास में जन–संचार माध्यमों का क्या योगदान है? उदाहरणों के द्वारा स्पष्ट करें।
3. बाल विकास में परिवार एवं शिक्षक की क्या भूमिका होनी चाहिए?
4. दो सामान लिंग वाले बच्चो जिनमें कम से कम पांच वर्ष का अंतर है उसका नियमित प्रेक्षण कीजिये। देखिए उनमें वृद्धि एवं विकास के अभिलक्षण किस प्रकार प्रकट होते हैं। प्रत्येक के पांच–पांच बिंदु नोट कीजिये।
5. सीखने का परिपक्वता से क्या कोई सम्बंध है? सोदाहरण स्पष्ट करें।
6. सीखने की अवधारणा का ऐतिहासिक विकास कैसे हुआ। प्रमुख सिद्धांतों को लेते हुए इसपर एक फ़्लिप बुक बनाएं।

इकाई **2**

बच्चों का शारीरिक एवं मनोगत्यात्मक विकास

2.1 परिचय

2.2 उद्देश्य

2.3 पूर्व अनुभव

2.4 शारीरिक विकास की समझ

- 2.4.1 शरीर के आकार में परिवर्तन
- 2.4.2 शरीर समानुपाती (साम्य) परिवर्तन
- 2.4.3 हड्डियों तथा माँसपेशियों में परिवर्तन
- 2.4.4 दाँतों की संरचना में परिवर्तन
- 2.4.5 मस्तिष्क का विकास

2.5 मनोगत्यात्मक विकास की समझ

- 2.5.1 स्थूल गत्यात्मक कौशल
- 2.5.2 सूक्ष्म गत्यात्मक कौशल

2.6 शारीरिक विकास को प्रभावित करने वाले कारक

2.7 शारीरिक एवं मनोगत्यात्मक विकास में अभिभावकों तथा शिक्षकों की भूमिका एवं दायित्व

2.8 स्मेकन

2.9 प्रदत्त कार्य

2.1 परिचय

बच्चों का विकास, विकास के विभिन्न पहलुओं से प्रभावित होता है जैसे शारीरिक विकास, गत्यात्मकविकास, संवेगात्मक विकास, नैतिक विकास आदि। विकास के सभी पहलूओं का एक द ूसरे पर भी गहरा प्रभाव पड़ता है। एक बच्चा जो अपने स्कूली जीवन के शुरूआती सालों में बहुत बीमार रहता है और आए दिन स्कूल से छुट्टी लेता है, वह पढ़ने में पिछड़ सकता है। इसके साथ संभव है कि इस बच्चे के दोस्त भी कम ही हों। तो हम देख रहे हैं कि शारीरिक विकास और स्वास्थ्य का बच्चों के अन्य विकास से जुड़ाव है। इस इकाई में हम बच्चे के शारीरिक एवं गत्यात्मक विकास पर अपनी समझ बनाएँगे। प्रत्येक बच्चा शारीरिक रूप से दूसरे बच्चे से भिन्न होता है। शिक्षकों का बच्चों की इस भिन्नता के प्रति संवेदनशील होना आवश्यक है। अन्य जीव जंतुओं की तुलना में, मनुष्यों में शारीरिक विकास की अवधि अधिक लंबी होती है। अपने जीवन के लगभग 20 साल में हम अनेक प्रकार के शारीरिक व मनोगत्यात्मक विकास की प्रक्रिया से गुज़रते हैं।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के माध्यम से हम:

- बच्चों के शारीरिक एवं मनोगत्यात्मक विकास के सिद्धांतों की समझ बनाएंगे।
- बच्चों के शारीरिक एवं मनोगत्यात्मक विकास में व्यक्तिगत विभिन्नताओं पर समझ बनाएंगे।
- उनके शारीरिक एवं मनोगत्यात्मक विकास को प्रभावित करने वाले विभिन्न कारकों की भूमिका को समझेंगे।

2.3 पूर्व अनुभव

पिछली इकाई में हमने बच्चों के विकास की समयानुसार बदलती अवधारणाओं एवं विकास से जुड़े अलग–अलग दृष्टिकोण की जानकारी हासिल की। हमने यह भी जाना कि वृद्धि एवं विकास कैसे परस्पर एक दूसरे से जुड़े है, कैसे विभिन्न तत्व विकास को प्रभावित करते हैं और बच्चों के विकास की प्रक्रिया में परिवार एवं शिक्षक की भूमिका कितनी महत्वपूर्ण है।

2.4 शारीरिक विकास की समझ

शारीरिक विकास का सन्दर्भ शारीरिक वृद्धि और शरीर में आए विभिन्न परिवर्तनों से है जिसमें व्यक्ति के आकार, भार, ऊँचाई, हड्डियों की मोटाई, दृष्टि, श्रवण आदि में आए परिवर्तन सम्मिलित होते हैं। विभिन्न विकासात्मक अवस्थाओं में बच्चे के आकर, शक्ति, अंगों तथा ज्ञानेन्द्रियों में विशिष्ट परिवर्तन आते हैं। जैसे–जैसे कोई शारीरिक परिवर्तन आता है वैसे–वैसे बच्चे में नई योग्यताएं तथा कौशल विकसित हो जाते हैं। शारीरिक विकास के साथ ही मनोगत्यात्मक विकास भी जुड़ा हुआ है जिसके बारे में अगले खण्ड में हम समझेंगे।

बच्चों के शारीरिक विकास की बात करें तो इसे सामान्य तौर पर कुछ अवस्थाओं के माध्यम से समझ सकते हैं। आइए अब विकास की विभिन्न अवस्थाओं में होने वाले शारीरिक परिवर्तनों को निम्नलिखित सारणी के माध्यम से समझने का प्रयास करें :

विकास की विभिन्न अवस्थाओं में होने वाले शारीरिक परिवर्तन	
अवस्था एवं सम्भावित आयु वर्ग	शारीरिक परिवर्तन
शैशवावस्था (0–2 वर्ष) एवं पूर्व बाल्यावस्था (2–6 वर्ष)	• बच्चे के जन्म के उपरान्त तीन वर्ष तक उसका शारीरिक विकासअति तीव्र गति से होता है। एक वर्ष के अन्दर ही शिशु की हड्डियाँ, मांसपेशियां एवं अन्य अंग इतने

	विकसित हो जाते हैं, जिससे शिशु बैठने एवं खड़े होने में समर्थ हो जाते हैं। • तीन वर्ष की आयु में उसके पूरे दाँत निकल आते हैं, हाथ–पैर एवं पुठ्ठे मजबूत हो जाते हैं। • उनकी सभी इन्द्रियाँ सक्रिय हो जाती हैं, उसके भार एवं लम्बाई में निरंतर वृद्धि होती है। • 6 वर्ष की आयु तक बच्चे के विकास की गति मन्द हो जाती है। परन्तु उनकी कर्मेन्द्रियाँ एवं ज्ञानेन्द्रियाँ सुदृढ़ होती जाती है।
उत्तर बाल्यावस्था (6–12 वर्ष)	• बाल्यावस्था में बच्चे के शारीरिक विकास की गति मन्द होकर स्थिरता की ओर अग्रसित होती है। • जो शारीरिक विकास अभी तक हो चुका है, उसमें दृढ़ता आती है। • शारीरिक क्षमताओं में अभिवृद्धि होती है।
किशोरावस्था (12–18 वर्ष)	• इस अवस्था में किशोर के शरीर में विभिन्न परिवर्त्तन परिलक्षित होने लगते हैं। जैसे–भार एवं लम्बाई में वृद्धि, शारीरिक संरचना एवं मांसपेशियों में सुदृढ़ता, दाढ़ी एवं मूँछे निकल आना आदि। किशोरियों में रजोदर्शन, स्तनों में उभार, कुल्हों में उभार, शारीरिक आकर्षण में अभिवृद्धि आदि परिवर्तन आ जाते हैं।

अब हम इस पर विचार करें कि हम शारीरिक रूप से कितने बदल गए हैं और जैसे–जैसे हम बड़े होते जा रहे हैं, हम में कितना परिवर्त्तन आता जा रहा है। हम इस दुनिया में छोटे–छोटे जीवों के रूप में आते हैं परंतु शैशवावस्था में बड़ी तीव्रता से बढ़ते हैं। बाल्यावस्था में थोड़ा धीमें बढ़ते हैं तथा किशोरावस्था में पुनः बड़ी तेजी से बढ़ते हैं और इसके पश्चात फिर प्रौढ़ावस्था में बढ़ने की गति धीमी पड़ती जाती है जो वृद्धावस्था से लेकर मृत्युपर्यन्त चलती रहती है। समय के साथ–साथ विकास काल में बच्चों में

काफी परिवर्तन आते हैं। शरीर के आकार में आए अधिक सुस्पष्ट परिवर्तनों के साथ–साथ शरीर साम्यों (अनुपात), कंकाल संरचना, माँसपेशियों तथा शरीर के आंतरिक अंगों में भी सुस्पष्ट परिवर्तन आते रहते हैं। बच्चों के शरीर के आकार, समानुपातों (साम्यों) और माँसपेशियों में आए परिवर्तन बहुत सारे स्थूल और सूक्ष्म गत्यात्मक कौशलों के विकास में सहायता करते हैं।

2.4.1 शरीर के आकार में आने वाले परिवर्तन

आपके विचार से बच्चों के शारीरिक विकास में अत्यधिक सुस्पष्ट परिवर्तन कौन–कौन से हो सकते हैं? शारीरिक विकास में सबसे महत्वपूर्ण है। बच्चों के शरीर के आकार में आए व्यापक परिवर्तन जिन्हें उनके कद एवं भार में आए स्पष्ट परिवर्तनों के माध्यम से देखा जा सकता है। शैशवकाल में ये पविर्त्तन अत्यधिक तीव्र होते हैं– जन्म के पश्चात् किसी अन्य अवस्था में आए परिवर्तनों की तुलना में प्रथम दो वर्षों में वृद्धि अत्यंत तीव्र होती है। दो वर्ष के बाद वृद्धि दर कुछ कम हो जाती है।

शारीरिक विकास दर प्रारंभिक तथा मध्य बाल्यकाल में धीमी हो जाती है। अगले कुछ वर्षों में बच्चे का कद लगभग 2 से 3 इंच प्रति वर्ष बढ़ जाता है तथा भार 2 से 3 किलोग्राम प्रतिवर्ष बढ़ता रहता है। 6 से 8 वर्ष की आयु में लड़कियाँ, लड़कों की अपेक्षा थोड़ी छोटी और हल्की होती है। 9 वर्ष की आयु तक यह प्रवृति विपरीत हो जाती है। बाद में किशोरावस्था में लड़कों के शरीर का आकार तेजी से बढता है। इसके फलस्वरूप लड़कियों की अपेक्षा लड़के थोड़े लम्बे तथा अधिक वजन वाले होते हैं। 11 से 12 वर्ष के मध्य तक लड़कियों की वृद्धि दर, लड़कों की अपेक्षा अधिक तीव्र होती है परंतु 13 वर्ष के पश्चात् लड़के अधिक तेजी से बढ़ते हैं तथा लड़के, लड़कियों की अपेक्षा अधिक लम्बे तथा भारी हो जाते हैं। इसके बाद वृद्धि की गति धीमी पड़ जाती है जो 18 से 20 वर्ष की आयु तक चलता रहता है। यह सही है कि सभी बच्चों के लिए वृद्धि का स्वरूप एक जैसा ही रहता है परंतु जिस दर से उनका आकार या वजन बढ़ता है, वह अलग–अलग होता है।

शरीर का आकार जिसमें किसी बच्चे का कद और उसका भार सम्मिलित होता है, वह मुख्यतः आनुवांशिक तथा वातावरणीय दोनों प्रकार के कारकों से प्रभावित होता है। वंशानुगत कारकों का संबंध उन कारकों से है जो

बच्चा अपने माता–पिता से विरासत के रूप में प्राप्त करता है और जिसमें आनुवांशिक लक्षण सम्मिलित होते हैं जो बच्चों में स्थानांतरित हो जाते हैं। उदाहरण के लिए इस बात की काफी संभावना होती है कि लम्बे माँ–बाप के बच्चे भी लम्बे ही होंगे। इसके साथ–साथ यह भी सत्य है कि वातावरण संबंधी कारक जैसे पोषण, सामाजिक–आर्थिक स्थिति, परिवार का आस–पड़ोस, सांस्कृतिक परिवेश इत्यादि कारक बच्चे की शारीरिक वृद्धि और विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

बच्चों का शारीरिक विकास निश्चित, नियमित एवं क्रमिक होता है किन्तु हर बच्चा एक ही वजन अथवा आकार का नहीं होता। इस विविधता के कई कारण है। जैसेकि :

- जन्मजात कारक।
- गर्भावस्था के दौरान माँ का पोषण व आहार।
- पीयूष ग्रन्थि (पिट्युटरी ग्लैंड) द्वारा उत्पादित वृद्धि हार्मोन का अभाव। यह हार्मोन शरीर के बढ़ने के लिए उत्तरदायी होता है। वृद्धि हार्मोन की उत्पति विकास के किसी भी अवस्था में हो सकता है।
- अन्य विविध कारण जो परिवार व उसके व्यवहार में विविधता ला सकते हैं।

2.4.2 शरीर समानुपाती परिवर्तन

बच्चे जैसे–जैसे शैशवावस्था से बाल्यावस्था की ओर बढ़ते हैं उनके शरीर के अंगों के अनुपात में अंतरों से शरीर के आकार के रूप में अंतर प्रतीत होने लगता है। सामान्यतः शिशु गोलमटोल, माँसल होते हैं, परन्तु बाल्यकाल में वह लम्बी टाँगों वाले तथा पतले शरीर वाले बन जाते हैं। किशोरावस्था में पहुँचते–पहुँचते बच्चे सापेक्ष रूप से अब भी पतले तथा छरहरे शरीर वाले होते हैं। आइए देखें ये कैसे होता है :

शैशवावस्था में बच्चे का सिर उसके शेष शरीर की तुलना में अत्यधिक बड़ा होता है। इस अवस्था में बच्चे का सिर उसके शेष शरीर की लम्बाई में एक चौथाई भाग होता है जबकि प्रौढ़ावस्था में व्यक्ति के सिर और शेष शरीर का अनुपात 1:8 होता है: अर्थात सिर की लम्बाई, कुल लम्बाई का आठवाँ भाग होता है। सिर की चौड़ाई तीन वर्ष की आयु तक बढ़ती है। परन्तु

सिर की लम्बाई 18 वर्ष तक की आयु तक बढ़ती रहती है। वृद्धि का ढाँचा (पैटर्न) लड़के और लड़कियों दोनों में एक जैसा होता है, यद्यपि प्रत्येक अवस्था में लड़कों का सिर लड़कियों के सिर की अपेक्षा सदैव थोड़ा बड़ा होता है। 6 वर्ष तक की आयु तक बच्चों के धड़ की लम्बाई उनके जन्म के समय के धड़ की लम्बाई से दुगुनी हो जाती है परन्तु चौड़ाई उतनी ही होती है जितनी जन्म के समय थी। धीरे–धीरे बच्चा पतला होता जाता है और यह क्रम किशोरावस्था तक चलता रहता है।

उपर्युक्त तथ्यों से यह स्पष्ट है कि विभिन्न बच्चों कि वृद्धि एवं विकास भिन्न–भिन्न गति से होती है। इसलिए यह उचित होगा कि उन बच्चों को जो दूसरों से भिन्न प्रतीत होते हैं, नकारात्मक शब्दों से चिन्हित नहीं करना चाहिए। इसके अतिरिक्त यदि बच्चे के जीवन में एक महत्वपूर्ण प्रौढ़ के रूप में आपको तुलना करनी भी पड़े तो जिस क्षेत्र से बच्चा आता है, उसके मानदंडों को ध्यान में रखना चाहिए। बच्चों की प्रगति को मॉनीटर करने के लिए उसका पिछला वृद्धि रिकार्ड देखा जा सकता है।

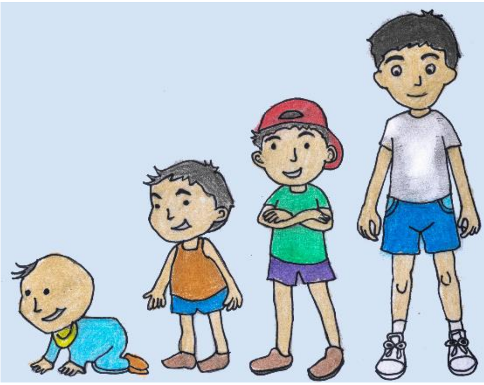

गतिविधि

अपनी कक्षा के बच्चों का खेल के कालांश में अवलोकन कीजिए। मैदान में प्रत्येक बच्चे के व्यवहार से उसके बार में क्या–क्या पता किया जा सकता है।

2.4.3 हड्डियों तथा माँसपेशियों में परिवर्तन

बाल्यावस्था में हड्डियों में आए परिवर्तनों का शारीरिक विकास में विशेष योगदान होता है। शिशु की हड्डियाँ कोमल तथा लचीली होती हैं क्योंकि वे मुख्यतः उपस्थि (कार्टिलेज) द्वारा निर्मित होती है। ये उपस्थियाँ मानव शरीर में कई अंगों में पाए जाने वाले संयोजी उत्तक होते हैं जिनमें अस्थियों के मध्य के जोड़, कान, नाक, कोहनीं, घुटना, टखना, ब्राकायल ट्यूब (श्वांसनली) तथा अन्तरमेरूदंडीय डिस्क सम्मिलित है। यह हड्डी सख्त तथा कम लचीली होती है। बच्चे जैसे–जैसे बड़े होते जाते हैं उनकी हड्डियाँ अधिक विस्तृत तथा लम्बी होती जाती है। हड्डियों के सुदृढ़ीकरण की प्रक्रिया को ओसीफिकेशन अथवा अस्थि–निर्माण कहा जाता है। यह प्रक्रिया प्रथम वर्ष के शुरू में आरंभ हो जाती है तथा युवावस्था तक यह पूर्ण होती है। जन्म के समय बच्चों में लगभग 270 हड्डियाँ होती हैं। युवावस्था तक इनकी संख्या लगभग 206 तक हो जाती है। यद्यपि किसी शिशु की हड्डियाँ आसानी से नहीं टूटती परंतु कोमल और लचीली होने के कारण उनमें विकृति तथा विरूपता आ जाती है। अस्थि विकास की दृष्टि से जन्म के समय लड़कियाँ लड़कों की अपेक्षा अधिक विकसित होती हैं। उत्तर बाल्यवास्था में शरीर की अस्थियाँ अधिक लम्बी तथा चौड़ी हो जाती हैं तथापि अस्थिबंधों का अस्थियों के साथ संयोजन अन्य अस्थियों से होता है जिससे मानव शरीर में जोड़ों का निर्माण होता है। कुछ अस्थिबंध जोड़ों की गतिशीलता को सीमित कर देते हैं अथवा कुछ गतियों को पूर्णतः प्रतिबंधित कर देते हैं। बढ़ते हुए मांसपेशीय बल के साथ संयोजित होने पर यह बच्चों में असाधारण गतिनम्यता (लचीलापन) प्रदान करते हैं। जैसे–जैसे उनका शरीर मजबूत होता जाता है, बच्चे शारीरिक गतिविधि अधिक करते हैं।

क्या आप जानते हैं कि हमारे शरीर में माँसपेशियों की क्या भूमिका है? माँसपेशियाँ हमारे शरीर के अंगों के संचालन में जैसे– हृदय, पाचनतंत्र इत्यादि में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। वे शक्ति तथा क्रियाकलाप समन्वय के लिए भी उत्तरदायी होती है। समय और अभ्यास के साथ–साथ छोटी माँसपेशियाँ परिपक्व हो जाती हैं और बच्चे बढ़ते हुए जटिल क्रियाकलाप को संपादित करते हैं। बच्चे को अपनी माँसपेशियों पर समय के साथ बेहतर नियंत्रण होता जाता है तथा किशोरावस्था तक पहुँचते–पहुँचते छोटी माँसपेशियाँ भी परिपक्व हो जाती हैं। यदि बच्चों को पौष्टिक भोजन और नियमित दिनचर्या के साथ शारीरिक क्रियाकलाप तथा

उपयुक्त विश्राम दिया जाए तो माँसपेशियाँ तथा वसीय उत्तकों का सम्यक विकास संभव है।

हड्डियों तथा माँसपेशियों के विकास में व्यापक व्यक्तिगत भिन्नताएँ होती हैं। एक ही आयु के दो बच्चों के विकास में भिन्नताएँ देखी जा सकती है।

बच्चों के शारीरिक विकास में माँसपेशियों के विकास के साथ–साथ दाँतों की संरचना का भी योगदान है। अब आइये बच्चों के शारीरिक विकास में दाँतों की संरचना एवं विकास पर चर्चा करें।

2.4.4 दाँतों की संरचना में परिवर्तन

शैशवावस्था में बच्चों के दाँतों की संरचना में महत्वपूर्ण परिवर्तन आते हैं। सभी बच्चों में दाँतों का आना क्रमिक रूप से सम्पन्न होता है, फिर भी उनमें अत्यधिक भिन्नता दिखाई देती है। जब भ्रूण 6 सप्ताह का होता है तभी से बच्चे के दाँत के विकास की प्रक्रिया प्रारंभ हो जाती है। पहला दाँत 6 महीने से 12 महीने की आयु तक आ जाता है और औसत रूप में 7 महीने में आना शुरू हो जाता है। ढ़ाई वर्ष की आयु के अंदर बच्चों के दाँतों की संख्या 20 तक हो जाती है। ये दाँत अस्थाई होते हैं जिन्हें प्रायः प्राथमिक या दूध के दाँत कहे जाते हैं।

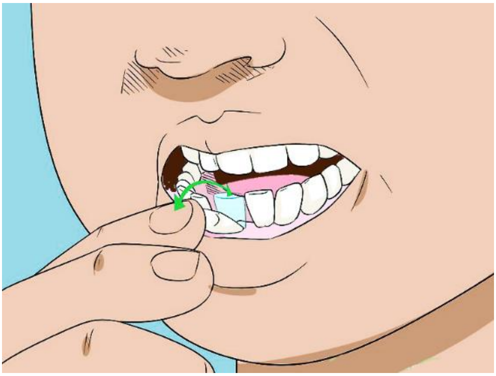

लगभग 6 वर्ष की आयु तक अधिकांश बच्चों के दूध के दाँत टूटने लगते हैं। संयुक्त दाँतों से आरंभ करते हुए उनके स्थाई दाँत आने आरंभ हो जाते हैं। 6 वर्ष से 12 वर्ष तक की आयु तक सभी दूध के दाँतों के स्थान पर स्थाई दाँत आ जाते हैं। इस प्रक्रिया में लड़कों की अपेक्षा लड़कियों के दूध

के दाँत थोड़ा पहले टूटते हैं। सर्वप्रथम सामने के दाँत फिर ऊपर और नीचे के दाँत टूटते हैं। प्रथम मोलर (चर्वण दंत या दाड़) लगभग 6 वर्ष तक की आयु तक निकल आते हैं। ये स्थाई दाँत होते हैं जो दूध के दाँतों के एकदम पीछे होते हैं। 13 वर्ष की आयु तक द्वितीय मोलर (दाड़े) दिखाई देने लगते हैं और अब बच्चे के 28 दाँत हो जाते हैं। अंतिम चार दांत जिन्हें अक्ल दाड़ भी कहते हैं, 17 से 25 वर्ष की आयु के बीच (यदि उगते हैं तो) आ जाते हैं। दाँत आने की आयु प्रत्येक बच्चें के लिए अलग–अलग हो सकती है। सामान्यतः लड़कियों के दाँत लड़कों की अपेक्षा शीघ्र आ जाते हैं।

2.4.5 मस्तिष्क का विकास

बच्चों का मस्तिष्क विकास उनके अन्य विकासों का आधार है। इस हिस्से में हम मस्तिष्क विकास के बारे में पढ़ेंगे और उसके प्रभाव को समझेंगे। आपने सुना होगा कि बच्चे जन्म के समय ही लगभग पूर्ण रूप से विकसित मस्तिष्क लेकर आते हैं। अमूमन गर्भ के पाँचवें सप्ताह से बीसवें सप्ताह तक, 50,000 से 1,00,000 मस्तिष्क की कोशिकाओं का विकास होता है। छः महीने के बच्चे के दिमाग़ का वज़न वयस्क स्थिति का आधा हो जाता है और छः साल की उम्र तक लगभग 90 प्रतिशत वज़न हासिल कर लेता है। परन्तु मानसिक विकास का ठीक से होना या नहीं होना बच्चों द्वारा जन्मोपरान्त होने वाले अनुभवों पर निर्भर करता है।

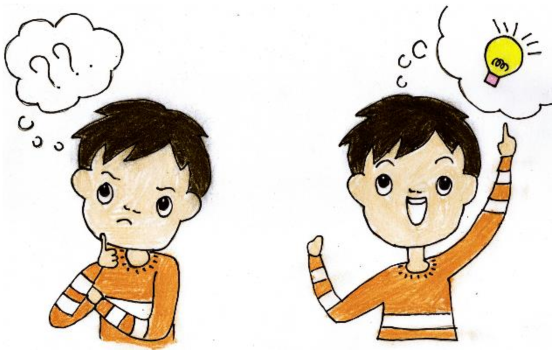

मस्तिष्क की कोशिकाएं बाकी शरीर की कोशिकाओं से अलग होती हैं। वे एक दूसरे से बिल्कुल सटकर नहीं रखी होतीं। उनके बीच में दूरी होती हैं, कोशिका से निकले रेशे, एक–दूसरे से सम्पर्क बनाते हैं। कोशिकाओं का

जीवित रहना उन्हें मिलने वाले उद्दीपन पर निर्भर करता है। जिन कोशिकाओं को वातावरण से उत्तेजनाएं मिलती रहती हैं वे नए सम्पर्क बनाती हैं और जीवित रहती हैं, जिन्हें कोई उत्तेजना नहीं मिलती वे मर जाते हैं। इसलिए बच्चों के शुरूआती सालों में जब दिमाग़ी कोशिकाएं नए–नए सम्पर्क बना रही हैं उन्हें उपयुक्त उद्दीपन मिलना आवश्यक है। सुनना, छूना, चखना, देखना आदि मस्तिष्क विकास के लिए आधार बनते हैं। यानि यह कहा जा सकता है कि शुरुआती अनुभव और पोषण जीवनपर्यन्त चलने वाली सीखने की प्रक्रिया पर गहरा प्रभाव डालते हैं।

जन्म के समय बच्चे का ज्यादातर वज़न सिर में होता है पर अगले दो सालों में यह वयस्क के जैसे डीलडौल और अनुपात प्राप्त करने लगते हैं। इस समय में बच्चों के सिर का नाप भी बढ़ता जाता है और उसे सिर की परिधि नापकर जाना जाता है। दिमाग के अलग–अलग हिस्सों की अलग–अलग ज़िम्मेदारी होती है, जैसे– ज्ञानेन्द्रियों से जानकारी हासिल करना, शरीर को हिलने के आदेश देना आदि। शोध से यह पता चला है कि इन हिस्सों का विकास उसी क्रम में होता है यह देखा गया है कि मस्तिष्क के उस हिस्से का विकास पहले होता है जो सिर बाजू और सीने को नियंत्रित करते हैं, बजाय उसके जो पैरों को नियंत्रित करते हैं। यह आपको कुछ परिचित बात लगी। दिमाग का आगे का हिस्सा जो विचारों और चेतना के लिए जिम्मेदार है, वह सबसे आखिर में विकसित होता है। ठीक से क्रियाशील यह लगभग 2 साल की उम्र में होता है पर इसका विकास 20–30 साल की उम्र तक चलता रहता है।

मस्तिष्क के दोनों गोलार्धों में सम्पर्क बनाए रखने के लिए रेशों का एक बंडल इन्हें जोड़ता है। इस बंडल का विकास पहले साल के खत्म होने के करीब–करीब शुरु होता है और 4–5 साल की उम्र तक यह काफी विकसित हो जाता है। नतीजतन इस उम्र के बच्चे वे दक्षताएं हासिल करने लगते हैं, जिनमें दोनों गोलार्धों की ज़रूरत पड़ती है। जैसे– दोनों हाथों से अलग चीज़ छूकर उन्हें पहचानना या अंतर बताना।

छः साल के होते–होते बच्चों की सीखने की नींव तैयार हो जाती है। इस समय में पालकों द्वारा दिए गए अनुभवों और प्रेमपूर्ण रिश्तों का गहरा प्रभाव पड़ता है।

जैसा कि आप भी जानते होंगे कि दिमाग के दायें और बायें हिस्से अलग–अलग ज़िम्मेदारियाँ निभाते हैं। यह शोधकर्ताओं के लिए एक अग्रणी

मुद्दा रहा है क्योंकि यह हमें दिमाग़ के लचीलेपन को जानने में मदद करता है। 1960 के दशक तक यह माना जाता था कि हिस्सों का विशिष्टीकरण 2 साल की उम्र तक नहीं होता था, पर अब हम यह जानते हैं कि विशिष्टीकरण की प्रक्रिया जन्म के समय प्रारम्भ हो चुकी होती है और अगले कुछ वर्षों में पूर्ण होती है। ऐसा भी देखा गया है कि ऑपरेशन द्वारा किसी किसी बच्चे का पूरा या लगभग पूरा दिमागी गोलार्ध हटा दिया गया पर वे भाषा और स्थानिक क्रियाओं का बचे हुए गोलार्ध द्वारा क्रियान्वयन हो सका।

जैसे कि हमने पहले भी बात की कि इस उम्र में मस्तिष्कक का ढलना तीव्र विकास हो रहा है तब अभिभावकों की भूमिका अहम हो जाती है। बच्चों को ऐसा वातावरण देना जो सीखने एवं समझ बनाने को प्रोत्साहित करे, पोषक भोजन मिले, ज्ञानेन्द्रियों को उत्तेजना मिले, जहाँ तनाव न हो और मज़े से चीज़ों को उलटने–पलटने की आज़ादी हो, उनके मस्तिष्क विकास को सम्बलन देगा और जीवन पर्यंत सीखने के लिए तैयार करेगा। चुनौतियाँ और उलटना–पलटना बच्चों को सक्रिय बनाते हैं। इसीलिए बच्चों का मानसिक विकास उनके क्रियाशील होने से जुड़ा है। जब बच्चे चलना शुरू करते हैं और नई–नई चीज़ें से रूबरू होते हैं तो मस्तिष्क विकास भी तीव्र होता है।

वीडियो देखने के लिए कृपया नीचे दिए गए लिंक पर क्लिक करें या दिए गए क्यूआर कोड को स्कैन करें

https://www.youtube.com/watch?v=2Ohi63Mqftw

गतिविधि

अपने विद्यालय के अलग–अलग कक्षाओं के बच्चों के शारीरिक विकास से सम्बंधित विभिन्न आंकड़ों को एकत्र करें तथा उनका विश्लेषण प्रस्तुत करें।

बच्चों के शरीरिक विकास के प्रति समुदाय में जागरूकता फैलाने के लिए कुछ योजना तैयार करें तथा अपने विद्यालय के बच्चों एवं शिक्षकों के साथ मिलकर उसका क्रियान्वयन करें।

2.5 मनोगत्यात्मक विकास का परिचय

बच्चों के सर्वांगीण विकास में उनके मनोगत्यात्मक विकास का होना अति आवश्यक है। मनोगत्यात्मक विकास का संबंध माँसपेशियों के कार्य तथा शरीर में गतियों या क्रियाओं की उत्पत्ति से है जो मानसिक क्रिया के सचेतन नियंत्रण के अंतर्गत होती है। यह गत्यात्मक कौशलों से निर्देशित होती हैं जैसे– गति, समन्वय, परिचालन, दक्षता, बल तथा चाल।

गतिविधि

कक्षा एक, चार एवं सात के बच्चों को कोई तस्वीर बनाकर उसमें रंग भरने को कहें एवं इसे एक प्रतियोगिता का रूप दें। इससे कक्षा में बच्चों का उत्साह बना रहेगा। प्रतियोगिता के समाप्त होने पर विजेताओं की घोषणा करें। सभी चित्रों को एकत्रित करके अपने पास रखें और अवकाश में ध्यान से चित्रों का अध्ययन करें। चित्रों के अध्ययन का निष्कर्ष लिखें।

उपरोक्त गतिविधि में आप ज़रूर इस बात को देखेंगे की कक्षा एक के बच्चों द्वारा रंग भरने के दौरान जितना रंग तस्वीर से बाहर आया होगा उतना रंग कक्षा चार एवं सात के बच्चों द्वारा रंग भरने के दौरान नहीं आया होगा। आप एक ही कक्षा के दो अलग अलग बच्चों में रंग भरने की कुशलता में भी अन्तर देखेंगे। विभिन्न विकासात्मक अवस्थाओं में बालकों के शरीर के विभिन्न अंगों में विशिष्ट परिवर्तन होते रहते हैं और जैसे–जैसे कोई शारीरिक एवं मानसिक परिवर्तन होता है, वैसे–वैसे बच्चे में नई योग्यताएं तथा कौशल विकसित होते जाते हैं।

मनोगत्यात्मक विकास में मुख्य रूप से दो प्रकार के कौशल सम्मिलित होते हैं–

स्थूल गत्यात्मक कौशल : जैसे– टहलना, दौड़ना, कुदना, उपर चढ़ना, नृत्य करना इत्यादि

सूक्ष्म गत्यात्मक कौशल : जैसे– चित्रकला करना, लिखना, सिलाई, रंग भरना इत्यादि।

2.5.1 स्थूल गत्यात्मक कौशल

स्थूल गत्यामत्मक कौशल वे योग्यताएँ होती है जो शैशवास्था तथा प्रारंभिक बाल्यावस्था के दौरान अर्जित की जाती है। जब तक बच्चे दो वर्ष के होते हैं लगभग सभी बच्चे खड़े होना, चलना और दौड़ना तथा सीढ़ी चढ़ना

सीख जाते हैं। ये कौशल प्रारंभिक बाल्यावस्था में पहले निर्मित होते हैं, इनमें सुधार आता है तथा फिर बेहतर रूप से नियंत्रित होते हैं तथा व्यक्ति के प्रौढ़ावस्था में पहुँचने तक इनका परिमार्जन होता रहता है। ये स्थूल गतियाँ बड़ी माँसपेशीय समूहों से आती हैं और समस्त शरीर को गति प्रदान करती हैं।

बच्चे के जीवन में गत्यात्मक प्रेरक विकास में सबसे बड़ा मील का पत्थर चलना है। चलने से बच्चा अधिक कुशलतापूर्वक रूप से अपने इर्दगिर्द घूम सकता है और उसके हाथ इस प्रकार स्वतंत्र हो जाते हैं। इससे बच्चा अपने आसपास की वस्तुओं को प्रभावित कर इधर–उधर कर सकने में सक्षम हो जाता है। यदि चलना सीखने में विलंब होता है तो यह इस बात का संकेतक है कि बच्चे की किसी न किसी प्रकार की समस्या है, जिसका संबंध उसके शारीरिक, मानसिक या सामाजिक–सांवेगिक स्वास्थ्य से है। बिना सहारा लिए चल सकने की औसत आयु 13 से 14 महीने होती है। यद्यपि कुछ बच्चे इससे कुछ पहले या कुछ बाद तक चलना आरंभ कर सकते हैं। चलने की योग्यता का विकास कुछ चरणों में होता है।

लगभग पाँच साल की आयु तक वह कूदने–फांदने, दौड़ने तथा ऊपर चढ़ने में सक्षम हो जाता है। 6 वर्ष की आयु तक अधिकांश बच्चों में बैठने, चलने, दौड़ने, कूदने, धकेलने, खींचने, कसकर पकड़ने, फैंकने आदि मूल प्रेरक कौशलों में प्रवीणता प्राप्त कर ली होती है। 6, 7, व 8 वर्ष के बच्चे श्रमसाध्य शारीरिक क्रियाकलाप करने लगते हैं और उनमें उनको आनंद आता है। 10 वर्ष की आयु में बच्चे विभिन्न प्रकार के खेल क्रियाकलाप में व्यस्त रहते हैं। इसका कारण है उनके स्थूल गत्यात्मक कौशलों का अधिक विकसित होना।

गतिविधि

स्थूल गत्यात्मक विकास से सम्बंधित विभिन्न उदाहरणों का चित्रात्मक प्रस्तुति बनाएं और अपने विद्यालय में लगाएं।

2.5.2 सूक्ष्म गत्यात्मक कौशल

सूक्ष्म गत्यात्मक कौशलों का संबंध छोटी माँसपेशियों की क्रियाओं से है जो शरीर के विभिन्न अंगों में होती हैं जैसे ऊँगलियों में। प्रायः इन सबका आँखों के साथ समन्वय होता है। प्रारंभिक आयु के बच्चों में सूक्ष्म गत्यात्यमक कौशल में समय के साथ सुधार आता रहता है। 5 या 6 वर्ष की आयु तक बच्चे सरल तथा छोटी माँसपेशियों की क्रियाओं में ऊंगलियों तथा हाथों में समन्वय करने के लिए तैयार हो जाते हैं, जैसे लिखने में, चित्रकारी में, काटने में, सीना–पिरोने में, क्राफ्ट कार्य आदि में। इस अवस्था पर बच्चे के सूक्ष्म गत्यात्मक कौशल प्रारंभिक अवस्था में होते हैं। तथापि जैसे–जैसे बच्चा बड़ा होता जाता है, इनमें सुधार आता रहता है। 6 वर्ष की आयु से 10 वर्ष तक इन कौशलों की प्राप्ति में निरंतर सुधार आता रहता है।

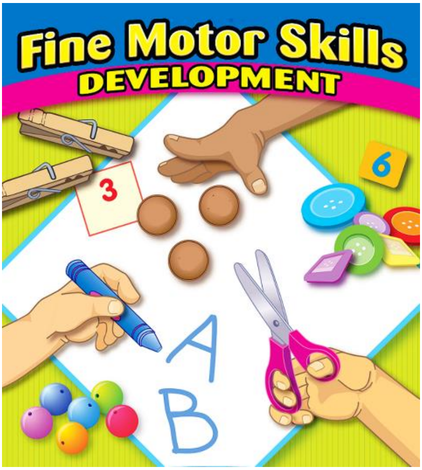

6 वर्ष तक की आयु तक अधिकांश बच्चे यथोचित स्पष्टता के साथ वर्णमाला लिख सकते हैं। अपना नाम लिख सकते हैं तथा एक से दस तक की संख्याओं को लिख सकते हैं, तथापि उनकी लिखावट काफी बड़ी होती है क्योंकि उनके प्रयास में संपूर्ण बाजू सम्मिलित हो जाती है, मात्र कलाई तथा ऊँगलियाँ ही नहीं। धीरे–धीरे जैसे वे एक जैसी ऊँचाई तथा स्थान के साथ अधिक शुद्ध वर्ण लिखने लगते हैं, उनकी लिखावट में सुधार आता रहता है। जैसे–जैसे बच्चे प्रारंभिक कक्षाएँ पास करते जाते हैं, आप उन अंतरों को देख सकते हैं। यदि सीखने और अभ्यास का अवसर दिया जाए तो बच्चे इन कौशलों को शीघ्र ही प्राप्त कर सकते हैं। सूक्ष्म गत्यात्मक कौशलों की प्राप्ति में पर्याप्त विभिन्नता देखने को मिलती है। बच्चा उन कार्यों को करना सीख जाता है जिनके लिए उसमें योग्यता है, उसे करने

के अभ्यास का अवसर मिलता है। बच्चा जैसे–जैसे बड़ा होता जाता है उसके द्वारा अर्जित सूक्ष्म गत्यात्मक कौशलों में एक निरंतर सुधार होता रहता है। 6 वर्ष तक की आयु तक, अधिकांश बच्चे कागज तथा चिकनी मिट्टी की सहायता से वस्तुएँ बनाने लगते हैं, छोटे क्राफ्ट कार्य करना, सीना–पिरोना, तथा लिखना सीख जाते हैं। इन कौशलों में सुधार न केवल पूर्व बाल्यावस्था तक जारी रहता है अपितु उत्तर बाल्यावस्था तथा किशोरावस्था तक भी चलता है। इन सूक्ष्म गत्यातमक कौशलों के विकास का ढाँचा लड़के और लड़कियों, दोनों के लिए एक जैसा होता है।

गतिविधि

> सूक्ष्म गत्यात्मक विकास के विभिन्न उदाहरणों का एक चित्रात्मक प्रस्तुति बनाएं तथा उसे अपने अध्ययन केन्द्र पर प्रस्तुत करें। साथ ही, अपने विद्यालय के अन्य साथियों से उसपर चर्चा करें।

2.6 शारीरिक विकास को प्रभावित करने वाले कारक

शैशवास्था से किशोरावस्था तक की अवधि में चार बातों की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। पहली–पोषण, दूसरी– आनुवांशिकता तीसरी – खेल या दुनिया को खोजने के मौके, चौथा संक्रामक बीमारियाँ।

पोषण : ऐसा हो सकता है कि किसी को अपने आहार से बहुत कम या अपेक्षाकृत बहुत अधिक पोषक तत्व मिल रहे हों। आहार संबंधी ऐसी स्थिति यदि लम्बे समय तक जारी रहे तो इससे

कुपोषण की संभावना बढ़ सकती है। कुपोषण का शारीरिक विकास पर बुरा असर पड़ सकता है। कुपोषण शब्द से तात्पर्य है – अल्पपोषण अथवा अतिपोषण।

अल्पपोषण वह स्थिति है, जब व्यक्ति को अपने आहार द्वारा बहुत कम पोषक तत्व मिल रहे हों। इसके विपरीत अतिपोषण वह अवस्था है, जब व्यक्ति को अपने आहार द्वारा अपेक्षा से अधिक पोषक तत्व मिल रहे हों। प्रारंभिक वर्षों के दौरान कुपोषण से मस्तिष्क के कुछ भाग और तंत्रिका तंत्र स्थायी रूप से प्रभावित हो सकते हैं। कुपोषण से वृद्धि दर और गत्यात्मक समन्वय भी प्रभावित होते हैं। इसके अतिरिक्त, कुपोषित बच्चे साधारणतः बहुत सक्रिय नहीं होते और गत्यात्मक कौशलों के साथ ही उनके संज्ञानात्मक कौशलों का विकास भी प्रभावित होता है।

बालिका को एक संतुलित और पोषक आहार देना जरूरी है। संतुलित आहार वह आहार है जिसमें शरीर के लिए अपेक्षित सभी पोषक तत्व उचित मात्रा में होते हैं। पोषक तत्वों के पांच वर्ग होते है–मांड, प्रोटीन, वसा, विटामिन और खनिज तत्व। जहां तक संभव हो, शालापूर्व बालिका के आहार में इन सभी वर्गों के पोषक तत्व होने चाहिए। चूंकि बच्चे अपेक्षाकृत अधिक सक्रिय होते हैं अतः उनके आहार में पर्याप्त मात्रा में ऊर्जा प्रदान करने वाले पोषक तत्वों का होना अनिवार्य है। सक्रियता स्तर अधिक होने के साथ ही उनकी शारीरिक वृद्धि भी तीव्र गति से होने लगती है।

अनुवांशिकता : हम अपने आसपास देखते है कि एक ही माता–पिता के बच्चे उनके जैसी ही ऊँचाई के होते है एवं समान चेहरा होता है। अतः हम बता सकते है ये भाई बहन है। इसके विपरित यदि माता–पिता लम्बे है एवं बच्चा छोटे कद का है तो लोग आश्चर्य करते है कि बच्चा छोटा कैसे रह गया है। आइए देखे कि माता–पिता के जीन्स किस प्रकार से बच्चों के शारीरिक विकास को प्रभावित करते है–

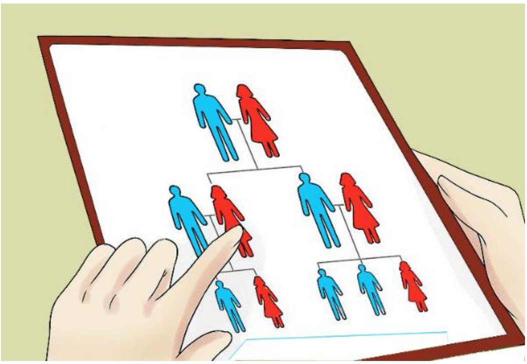

बच्चे का शारीरिक विकास जीन्स से निर्धारित होता है। समरूपी जुड़वा बच्चे शारीरिक आकार में विषयरूपी जुड़वा बच्चों की तुलना में अधिक समानता रखते है परन्तु जन्म के समय समरूपी बच्चे शारीरिक विकास की दृष्टि से अधिक असमान होते हैं क्योंकि जन्म से पूर्व वे एक ही प्लाजेन्टा(नाल) से अपना पोषण प्राप्त करते है। स्वाभाविक है कि इस परिस्थिति में किसी एक को ही अधिक पोषण मिलने के करण ऐसा होता है। जन्म के पश्चात यदि दोनों को समान पोषण मिले तो कुछ ही माह में कमजोर/छोटा बच्चा भी अपने जीन्स द्वारा निर्धारित वास्तविक वृद्धि/बढ़त को प्राप्त कर लेता है। जीन्स शरीर में हार्मोन्स के विकास व संवेदनशीलता को भी निर्धारित करते है परन्तु हार्मोन्स की उत्पति को दवाइयों व पोषण द्वारा भी कम ज्यादा किया जा सकता है। समान वातावरण/परिस्थिति में शरीर की वृद्धि/ऊँचाई व शारीरिक परिपक्वता जीन्स से बच्चे एक अथवा दो माह में ही एक जैसे दिखाई देने लग जाते है जबकि विषमरूपी बच्चों में यह अंतर लगभग एक वर्ष तक दिखई देता है। है। इस प्रकार जीन्स द्वारा निर्धारित शारीरिक विकास के किसी भी पक्ष की स्वाभाविक पूर्ति उचित वातावरण व पोषण पर निर्भर करती है।

खेलकूद एवं योग : बच्चों के शारीरिक विकास में खेलकूद का बहुत अधिक महत्व होता है। जो बच्चे जन्म के पश्चात जितने अधिक क्रियाशील होते है, उम्र बढ़ने के साथ–साथ जितना अधिक खेलकूद करते है उनका शारीरिक विकास उतना ही स्वाभाविक तरीके से (जीन्स द्वारा निर्धारित अवस्था में) होता है। बच्चे अपनी अभिव्यक्ति भी खेलकूद व शारीरिक क्रियाओं के माध्यम से ही अधिक सहज रूप से कर पाते है। अतः यह महत्वपूर्ण हो जाता है कि परिवार में माता–पिता व अन्य सदस्य अथवा बच्चा जहाँ पल रहा है वे लोग इस बात को अच्छी तरह समझे कि बच्चों के शारीरिक विकास हेतु खेलकूद व शारीरिक व्यायाम का बहुत महत्व है। प्रायः भारतीय

परिवारों में अधिक खेलकूद करने वाली लड़कियों के प्रति आम राय होती है कि उन्हें अधिक उछलकूद नहीं करनी चाहिए। अधिक समय घर में रहना चाहिए परन्तु ऐसा करते समय परिवार के लोग यह भूल जाते है कि लड़कियों के शारीरिक विकास हेतु भी खेलना कूदना आवश्यक है। उचित शारीरिक विकास न होने पर बच्चों में इसका प्रभाव अन्य विकास जैसे संवेगात्मक, भावात्मक विकास पर दिखाई देता है।

विद्यालय आने के पश्चात शिक्षकों की भी महत्वपूर्ण जिम्मेदारी है कि बच्चों को अधिक ये अधिक शारीरिक गतिविधियाँ व क्रियाएँ करवाएँ जिसमें विभिन्न खेलकूद, यौगिक कियाओं का भी समावेश हो।

बच्चों के शारीरिक एवं मनोगत्यात्मक विकास को संतुलित एवं पूर्ण विकसित करने में योग एवं व्यायाम काफी प्रभावी एवं महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। इसलिए सम्पूर्ण शारीरिक शिक्षा जन्मकाल से ही प्रारम्भ कर देनी चाहिए तथा जीवन भर चलती रहनी चाहिए। यदि हम योग के मुख्य पक्षों की बात करें तो इसके मुख्य पक्ष निम्नलिखित हैं –

1. शरीर की क्रिया–प्रणाली पर नियंत्रण एवं सन्तुलन रखना।
2. सभी शारीरिक खण्ड भागों का व गतियों का सुसंगत–व्यवस्थित तथा सर्वसमावेशी विकास करना।
3. शरीर में यदि कोई अपूर्णता या विकृति हो तो उसका सुधार करना।

संक्रामक बीमारियाँ : जैसा कि हम पहले भी चर्चा कर चुके है कि विकास के कारकों का एक दूसरे से जुड़ाव होता है, शारीरिक विकास को प्रभावित करने वाले करकों में संक्रामक रोग एक महत्वपूर्ण करक है। जिन बच्चों की जन्म से ही रोग प्रतिरोधक क्षमता कम होती है उनके बार–बार बीमार पड़ने की संभावना अधिक होती है तथा उचित पोषण मिलने पर भी ऐसे बच्चों का शरीर उसे सही तरीके से ग्रहण नहीं कर पाता है। जो बच्चे जन्म से स्वस्थ होते है अथवा उनकों रोग प्रतिरोधक क्षमता अच्छी होती है ऐसे बच्चे भी वातावरण से अथवा अन्य रोगी व्यक्ति के संपर्क में आने पर बीमार हो सकते है। कुछ बच्चे जन्म से स्वस्थ होते है परन्तु उचित पोषण न मिलने पर कुपोषण के शिकार हो जाते है। ऐसे बच्चों के बीमार होने तथा अन्य बीमारियों से संक्रमित होने की संभावना बढ़ जाती है। अतः बच्चों

का इन बीमारियों से बचाव आवश्यक है। बच्चों के माता–पिता, परिवार व शिक्षकों की जिम्मेदारी है कि बच्चों का सही समय पर टीकाकरण करवाएँ व समाज के अन्य लोगों को भी इस हेतु प्रेरित करें।

बहुत सारी शारीरिक एवं मनोगत्यात्मक बीमारियाँ या विकास की अपर्याप्तता से संबंधित जानकारी बाल्यावस्था में हो जाने पर दूर किया जा सकता है। संवेदी दोषों या कुछ मनोगत्यात्मक अक्षमताओं का उपचार कर उनको सुधारा जा सकता है। इन सारी अक्षमताओं में देखने, बोलने या सुनने वाली कठिनाईयां भी आती हैं। जटिल बीमारियों या दाँतों के दोषों को भी दूर किया जा सकता है या दूर करने की कोशिश की जा सकती है। अतः बच्चों के शारीरिक एवं मनोगत्यात्मक विकास में इनका निदानात्मक योगदान भी है।

वीडियो देखने के लिए कृपया नीचे दिए गए लिंक पर क्लिक करें या दिए गए क्यूआर कोड को स्कैन करें

https://www.youtube.com/watch?v=SE9jNKroGso

गतिविधि

अपने विद्यालय के कक्षा से समान उम्र के दो बच्चों के क्रिया–कलाप का अवलोकन करें जिनमें एक प्रायः बीमार रहने वाला बच्चा हो तथा दूसरा सामान्य हो। दोनो के व्यक्तित्व के सकारात्मक एवं नकारात्मक पक्ष निम्न तालिका में लिखें।

	व्यक्तित्व का सकारात्मक पक्ष	व्यक्तित्व का नाकारात्मक पक्ष
बीमार रहने वाला बच्चा		
सामान्य बच्चा		

2.7 शारीरिक एवं मनोगत्यात्मक विकास में शिक्षकों एवं अभिभावकों की भूमिका एवं दायित्व

उपर्युक्त उपइकाई में हम जान चुके है कि बच्चे के शारीरिक एवं मनोगत्यात्मक विकास में आहार, पोषण, खेल, व्यायाम और योग की भूमिका काफी अहम होती है।

आइए, अब हम यह जानने का प्रयास करें कि शारीरिक विकास में अभिभावक और शिक्षक की भूमिका और दायित्व किस प्रकार अहम होती है। हमने देखा कि शारीरिक और मनोगत्यात्मक विकास आनुवंशिक तथा वातावरणीय दोनों प्रकार के कारकों से प्रभावित होता है। आनुवंशिक गुण वह है जो बच्चे अपने माता–पिता और पूर्वजों से प्राप्त करते हैं। साथ ही साथ उसके लालन–पालन, देख–भाल जैसे– संतुलित आहार एवं पोषण, सामाजिक–आर्थिक स्थिति, परिवार का आस–पड़ोस, सांस्कृतिक परिवेश आदि की भी महत्वपूर्ण भूमिका होती है जो उसे उसके अभिभावक द्वारा प्राप्त होती है।

बच्चों के शारीरिक विकास में व्यक्तिगत विभिन्नताएँ होती है। बच्चे का कद और भार का बढ़ना एक ढ़ांचे के अनुसार होता है लेकिन शारीरिक और

मनोगत्यात्मक विकास सही तरीके से हो इसमें अभिभावक उनकी मदद करते हैं, जैसे– ऊँगली पकड़कर चलना, खड़ा होना सीखना, बैठना सीखना, झुकना सीखना आदि। बालकों को संतुलित आहार, नियमित दिनचर्या साथ ही साथ, शारीरिक क्रिया–कलाप तथा उपयुक्त विश्राम देना अभिभावकों का दायित्व है जिससे बालकों की मांसपेशियों तथा वसीय उत्तकों के स्वस्थ विकास को बढ़ावा मिलता है।

गतिविधि

सौरभ आठ वर्ष का बच्चे है जो कक्षा तीन में पढ़ता है उसकी माँ उसके संतुलित आहार का ध्यान रखती है और उसके गृह कार्यों में उसकी मदद भी करती है। खेलने में उसकी काफी रूचि है वह हमेशा खेलों में भाग लेता है और जीत हासिल करता है।

दूसरा बच्चे सोहन जिसकी उम्र भी आठ वर्ष है और वह अपने भाई बहनों में बड़ा है, उसे अपने दो छोटे भाई बहनों की भी देखभाल करनी पड़ती है। उसे संतुलित आहार नहीं मिल पाता है। उसे खेलने का भी समय नहीं मिलता है। सोहन का वजन और लम्बाई सौरभ के वजन और लम्बाई से कम है।

आपने उपर्युक्त दोनों बालकों की स्थिति के बारे में जाना। अब सौरभ और सोहन दोनों बालकों की स्थिति पर विचार करें तथा उनके शारीरिक एवं मनोगत्यात्मक विकास की गति सही–सही तरीके से होगी या नहीं स्पष्ट करें। यदि नही तो क्यों?

आइए अब हम ऊपर दिए गए बातों को उदाहरण द्वारा समझने की कोशिश करते हैं।

राधा – रानी, तुम्हारी बेटी तो एक वर्ष में ही चलना शुरू कर दी।

रानी – हाँ, मैंने और परिवार के अन्य सदस्यों ने इसके आहार एवं शरीर (हाथ–पैर) की मालिश पर पूरा ध्यान दिया, जिससे यह जल्दी चलने लगी।

राधा – सही बोल रही हो, मीना की बेटी भी एक वर्ष की हो गई है। लेकिन वह चलती नहीं है असल में उसके घर के सदस्य बच्ची के खान–पान और मालिश पर ध्यान नहीं देते हैं।

रानी – राधा, यह समय बच्चों के समुचित विकास का होता है इसलिए हम अभिभावकों को बच्चों की सही देखभाल आवश्य करनी चाहिए, नहीं तो उनका सही ढ़ंग से शारीरिक विकास नहीं हो पाता है और वे समय पर चलना, दौड़ना, खेलना नहीं सीख पाते हैं, उन्हें बढ़ती उम्र में बड़ों के सहयोग और प्यार की भी बहुत जरूरत होती है।

उपर्युक्त उदाहरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि सभी बच्चों में शारीरिक विकास एक समान नहीं होता है। शिशु की हड्डियाँ आसानी से नहीं टूटती परन्तु कोमल और लचीली होने के कारण उनमें विकृति तथा विरूपता आ जाती है। यदि अभिभावक द्वारा उनकी देखभाल सही तरीके से नहीं होती है तो बच्चे के शारीरिक विकास में विकृति आ जाती है। परिणाम स्वरूप लोगो द्वारा उन्हें नाटा, मोटू, मरियल या ढीलू जैसे शब्दों से सम्बोधित किया जाता है जो उनके आगे की क्रिया–कलापों को भी प्रभावित करता है।

अतः यह आवश्यक है कि वे बच्चे जो दूसरों से भिन्न हैं उन्हें नकारात्मक शब्दों द्वारा चिन्हित नहीं किया जाए और अभिभावकों का भी यह दायित्व है कि समय पर विशेषज्ञों, डाक्टरों तथा मनोवैज्ञानिकों की सहायता से उनकी समस्याओं को दूर करें।

शिक्षक की भूमिका :– शरीरिक विकास व्यक्तित्व के सभी पक्षों के विकास में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, इसलिए इस पर विशेष ध्यान दिया जाना अति आवश्यक है। बच्चे अपने बचपन तथा किशोरावस्था का एक सार्थक भाग विद्यालय में शिक्षकों के साथ बिताते हैं। शिक्षक को वे अपना आदर्श मानते हैं तथा उनके व्यवहार से प्रभावित होते हैं। ऐसे में शिक्षक उनके शारीरिक एवं मनोगत्यात्मक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। वे बच्चों में मौजूद खूबियों एवं कमियों को पहचान कर उनके अभिभावक को बता सकते हैं। जिससे उनके अभिभावक उन बच्चों के सम्पूर्ण विकास के लिए उचित कदम उठा सकें।

शिक्षक मुख्यतः दो कौशलों द्वारा बालकों के मनोगत्यात्मक विकास में सहयोग करते हैं। एक तो गत्यात्मक कौशल जैसे– व्यायाम, दौड़ना, खेल

की क्रिया, नृत्य आदि सीखाने के माध्यम से तथा दूसरा सूक्ष्म गत्यात्मक कौशल जैसे– चित्रकला, लिखना, सिलाई करना, रंग भरना आदि के प्रशिक्षण के माध्यम से। जैसे–जैसे बच्चे बड़े होते जाते हैं तथा ऊपर की कक्षा में जाते हैं उनके खेलने, चलने, उठने–बैठने आदि का ढ़ंग बदलने लगता है। उसमें भी शिक्षक द्वारा यह सुनिश्चित किया जाता है कि– बच्चा बैठता कैसे है? खड़ा कैसे होता है? झुकता कैसे है? बच्चा जूता और कपड़ा सही ढ़ंग से पहनता है या नही?

उपुर्यक्त सभी बातें बच्चे के शारीरिक और मनोगत्यात्मक विकास के लिए ध्यान देने योग्य है जो उनके विकास में सहायक होती है।

बच्चों के अन्दर पाये जानेवाले विभिन्न गुणों यथा खेल, चित्रकारी, विभिन्न प्रकार के दस्तकारी कार्य जैसे– सूत काटने, धातु कार्य, दर्जीगिरी, खिलौना बनाना, किताब मढ़ना, बागवानी, जूड़ो–कराटा आदि सिखाने के लिए बच्चों को प्रोत्साहित कर सकते हैं। हम शिक्षक के रूप में बच्चों के व्यक्तिगत विभिन्नता को ध्यान में रखकर उसके साथ अनुकूल व्यवहार कर सकते हैं।

अब हमें शिक्षा के अधिकार के अन्तर्गत समावेशी शिक्षा के उद्देश्यों को प्राप्त करना है। ऐसे में शिक्षक के रूप में हमारा यह कर्तव्य बनता है कि विशेष आवश्यकता वाले बच्चे, सामाजिक तथा आर्थिक रूप से पिछड़े बच्चे सभी को मुख्य धारा से जोड़कर उनके विकास में अपना योगदान दें। सारांश रूप से यह कहा जा सकता है कि शिक्षक विद्यार्थियों को इस प्रकार ढ़ालते हैं कि विद्यार्थी अपने स्वास्थ्य को बनाए रखते हुए अपनी योग्यताओं एवं क्षमताओं का पर्याप्त विकास कर राष्ट्र के विकास में भरपूर योगदान दे सकें।

2.8 समेकन

प्रस्तुत इकाई में हमने बच्चों के शारीरिक विकास को समझने का प्रयास किया है। हमने सीखा कि शरीर के आकार, कंकाली संरचना, अस्थियों, मांसपेशियों तथा दाँतों में आए परिवर्तन, बच्चों के शारीरिक विकास में योगदान देते हैं। शारीरिक परिवर्तनों के साथ–साथ मनोगत्यात्मक विकास भी होता रहता है, जिसमें बच्चों के स्थूल गत्यात्मक कौशल तथा सूक्ष्म

गत्यात्मक कौशल सम्मिलित होते हैं। हमने उन कारकों का अध्ययन भी किया जो शारीरिक विकास को बाधित करते हैं तथा इसके साथ कुछ उपचारों के बारे में भी पढ़ा।

इसके साथ ही प्रस्तुत इकाई में हमने यह भी जाना की बाल स्वास्थ्य तथा विकास में आहार, पोषण, खेल, व्यायाम व योग की क्या भूमिका होती है, शारीरिक एवं मनोमनोगत्यात्मक विकास में अभिभावकों तथा शिक्षकों की भूमिका एवं दायित्व पर भी हमने विस्तार से चर्चा की।

बच्चे का शारीरिक एवं मनोगत्यात्मक विकास एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। फलत:, हममें से प्रत्येक इस विषय में कुछ न कुछ जानता है, लेकिन इतना पर्याप्त नहीं है। हमें बच्चे के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास करने के लिए इस विषय को और गहराई से जानना होगा। इस विषय का ज्ञान बच्चे के व्यक्तित्व के विकास में वैसे हीं सहायक है जैसे कि माली का ज्ञान पौधे एवं फूल के विकास में।

इकाई की विस्तृत समझ के लिए निम्नलिखित ई–संसाधनों का भी उपयोग जरूर करें :

- इकाई के विषयवस्तु पर निर्मित आई.सी.टी. /ऑडियो–विजुअल/एनिमेशन सामग्री।
- प्रारम्भिक स्तर की पाठ्यपुस्तकों पर आधारित डिजिटल सामग्री, जो इस इकाई से सम्बंधित हों।
- इकाई के विषयवस्तु से सम्बंधित फिल्म, डॉक्युमेंटरी, प्रेजेन्टेशन, वेब–रिसोर्स, ओपेन रिसोर्स, आदि।

2.9 प्रदत्त कार्य

1. शारीरिक विकास के विभिन्न पहलुओं का संक्षिप्त वर्णन करें।
2. विकास की विभिन्न अवस्थाओं में बच्चे के शरीर में होनेवाले परिवर्तन का सोदाहरण विश्लेषण करें।

3. शैशवावस्था में बच्चे में होनेवाले मनोगत्यात्मक विकास को विस्तार से अपने आस–पड़ोस के किसी नवजान शिशु का केस–स्टडी करके समझाएं।
4. मनोगत्यात्मक कौशलों के प्रकार को समझाएँ।
5. बच्चे के शारीरिक एवं मनोगत्यात्मक विकास में शिक्षक एवं अभिभावक की भूमिका की समीक्षा करें।
6. बच्चे के शारीरिक एवं मनोगत्यात्मक विकास का ज्ञान एक शिक्षक के लिए क्यों आवश्यक है? तर्क दें।
7. अपने विद्यालय के तीन से चार शिक्षकों के व्यवहार को देखें। फिर यह निश्चित करें कि उनका व्यवहार बच्चे के शारीरिक एवं मनोगत्यात्मक विकास को बढ़ावा देने योग्य है या नहीं।

वीडियो देखने के लिए कृपया नीचे दिए गए लिंक पर क्लिक करें या दिए गए क्यूआर कोड को स्कैन करें

https://www.youtube.com/watch?v=BLU_NyNFHG4

इकाई 3

संज्ञानात्मक विकास और सीखना

3.1 परिचय

3.2 उद्देश्य

3.3 पूर्व अनुभव

3.4 संज्ञानात्मक विकास की समझ

3.4.1 संज्ञानात्मक विकास और सीखना: जीन पियाजे का सिद्धांत

3.5 संज्ञानात्मक विकास और बुद्धि की अवधारणा

3.5.1 बुद्धि की अवधारणा का ऐतिहासिक संदर्भ

3.5.2 समकालीन संदर्भ में बुद्धि की सैद्धांतिक समझ

3.6 समेकन

3.7 प्रदत्त कार्य

3.1 परिचय

बच्चे कैसे सोचते हैं, किस प्रकार से वे अपने परिवेश का अनुभव करते हैं? वे अनजान चीजों के प्रति

कैसी प्रतिक्रिया करते हैं, रोज़ाना आनेवाले समस्याओं का समाधन कैसे करते है? आदि बातों को समझने के लिए बच्चों के संज्ञानात्मक विकास को समझना जरूरी है। शिक्षकों के लिए तो इसे जानना और भी महत्वपूर्ण है क्योंकि बच्चों के सीखने–सिखाने की प्रक्रिया में संज्ञानात्मक पक्षों पर सबसे ज्यादा जोर होता है। इस प्रकार का विकास एक शिक्षक को यह मौका देता है कि वह अपने विद्यार्थियों में विश्लेषण व समस्या समाधान की क्षमता को विकसित करे तथा अपने शिक्षण में उन्हें जगह दे। इसी के साथ, संज्ञानात्मक पक्ष का एक पहलू बुद्धि भी है, जिसके बारे में भी कई जटिल अवधारणाएं हैं, जो विद्यालय में बच्चों के सीखने–सिखाने की प्रक्रिया को प्रभावित करते हैं। कक्षा के कौन से बच्चे तेज हैं और कौन से बच्चे मंद, इनको शिक्षक जिस प्रकार से तय करते हैं, उनको भी आलोचनात्मक ढंग से समझा जाना चाहिए। साथ ही, यह सवाल भी अहम है कि परिवार, शिक्षक और जनसंचार का भी बच्चों के संज्ञानात्मक विकास में क्या भूमिका है? इस इकाई में हम इन सभी मुद्दों पर चर्चा करेंगें।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के माध्यम से हमः

- संज्ञानात्मक विकास के अर्थ एवं स्वरूप को जान सकेंगे।
- संज्ञानात्मक विकास के सन्दर्भ में पियाजे एवं वायगोत्सकी के सिद्धांतों को जानेंगे।
- बुद्धि एवं संज्ञानात्मक विकास से संबंधित विस्तृत जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- संज्ञानात्मक विकास में परिवार, शिक्षक एवं जनसंचार माध्यम की भूमिका का विश्लेषण कर सकेंगे।

3.3 पूर्व अनुभव

बच्चों द्वारा खिलौनों को उठाना, पटकना, मुँह में डालना, आदि क्रियाएं हमने जरूर देखा होगा। इसी तरह बच्चे जन्म से अपने आसपास वयस्कों को विभिन्न भाषा का इस्तेमाल करते हुए देखते और सुनते हैं। धीरे–धीरे इन शब्दों को बच्चे सही चीज़ों से जोड़ना शुरू करते हैं, खुद से शब्द और वाक्य बोलने लगते हैं। हम यह भी पाते हैं कि सब बच्चे अलग–अलग समय पर बोलना शुरू करते हैं। घर में उन्हें अपनी गति से गलतियाँ करने, अपनी गति से इन्हें सुधारने की आजादी होती है। इस पूर्व अनुभव के साथ जब यह बच्चे स्कूल जाते हैं तो एक शिक्षक के लिए कक्षा के बच्चे काफी विभिन्नताएँ लिए होते हैं। इनकी समझ शिक्षकों के लिए जरूरी है तभी वे उनके संज्ञानात्मक विकास को सम्बोधित कर सकेंगे।

3.4 संज्ञानात्मक विकास की समझ

क्या कभी आपने यह जानने कि कोशिश की है कि बच्चे कैसे सोचते हैं, कैसे वह संसार का अनुभव करते हैं और किस प्रकार उनके मन में विचार जन्म लेते हैं? हम प्रायः देखते हैं कि हर बच्चा अनजान वस्तु के विषय में उसे समझने का प्रयास करता है। जैसे वह जानता है कि गर्मी लगने पर पंखे को चलाना है, हर साड़ी पहनने वाली महिला उसकी माँ नहीं है, इत्यादि । कक्षा में आपने यह भी महसूस किया होगा कि विभिन्न आयु–वर्ग के बच्चे एक ही प्रश्न का भिन्न–भिन्न उत्तर देते हैं। इन प्रश्नों को समझने के लिए उनके तरीके भी अलग–अलग होते हैं और उनके द्वारा दिये गए तर्क भी। आखिर बच्चों में यह समझने की योग्यता, वस्तुओं/व्यक्तियों/स्थितियों के बीच अंतर करने की योग्यता कैसे आती है? एक शिशु जो मूलतः जैविकीय प्राणी है, कैसे वह सामाजिक प्राणी बन जाता है और नई परिस्थितियों के साथ सामंजस्य स्थापित करता है? निश्चित रूप से ऐसा इसलिए होता है क्योंकि बच्चों में आयु के साथ–साथ उसकी मानसिक शक्तियां और मानसिक प्रक्रियाएं विकसित होती हैं जिसे हम संज्ञानात्मक विकास कहते हैं।

सामान्य अर्थ में संज्ञानात्मक विकास तार्किक व नवीन विचारों के अर्थ समझना एवं समस्या समाधान जैसे मानसिक व बौद्धिक प्रक्रिया का क्रमिक विकास है। संज्ञानात्मक योग्यता में वृद्धि के कारण ही बच्चों के व्यवहार में समय के साथ परिवर्तन आता रहता है। वातावरण के साथ समायोजन स्थापित करने में भी संज्ञान की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। स्पष्ट रूप से कहा जाय तो संज्ञानात्मक विकास वह है जो मुख्यतः बच्चों के ज्ञानात्मक पहलू/प्रक्रियाओं से संबंधित होता है। कुछ वर्षों पहले तक बच्चों के सोचने के बारे में केवल अटकलें लगाई जाती थी। शायद बच्चे दुनिया को ऊटपटांग, अजनबी वस्तुओं के संग्रह के रूप में देखते हैं या वयस्कों की तरह ही देखते हैं। हाल में हुए प्रयोगों और अवलोकनों से इस बात की पुष्टि हुई है कि बच्चों के सोचने और समझने की अपनी एक अलग प्रक्रिया है जो उनके संज्ञानात्मक विकास को प्रभावित करता है।

गतिविधि

जल्दी से यह सोचकर लिखें कि आपके घर में कितनी खिड़कियां है? अब यह विश्लेषण करें कि आपने खिड़कियों की संख्या के बारे में कैसे पता लगाया।

सभी खिड़कियां गिन लीं। ऐसा कर सकने के लिए जरूरी है कि हमारे दिमाग में अपने घर का एक नक्शा या चित्र हो। सोचने, याद करने और वर्गीकरण जैसी गतिविधियों में इन दिमागी चित्रों का बहुत योगदान है। क्या छोटे बच्चे भी ऐसे ही दिमागी चित्र बनाते हैं, और सोचते वक्त उनको उलटते–पलटते है? निम्नलिखित उदाहरणों पर विचार करें।

उदाहरण–1: आनन्दी पांच वर्ष की एक बच्ची है जो खिलौने के साथ खेल रही है उसके खिलौनों के बक्सों में कुछ गुड़िया, कुछ गेंद और पेंसिल हैं। खेलने के दौरान वह गुलाबी फ्रॉक वाली गुड़िया को गुलाबी गाड़ी के साथ रखती है अैर हरे फ्रॉक वाली गुड़िया को हरे गाड़ी के साथ रखती है। साथ ही साथ वह पेंसिल और गेंद को भी रंगों के आधार पर अलग–अलग कर लेती है।

उदाहरण–2: मनोज नौ वर्ष का एक बच्चा है जो रेल–गाड़ियों में घूम–घूमकर पत्रिकाएं और अखबार बेचता है। वह पढ़ना–लिखना नहीं जानता है लेकिन पैसों का हिसाब करने में उससे कोई गलती नहीं होती है। जबकि स्कूल में पढ़ने वाले बच्चे भी प्रायः गणित में गलतियाँ करते हैं।

3.4.1 संज्ञानात्मक विकास और सीखनाः जीन पियाजे का सिद्धांत

बच्चे कैसे सोचते हैं, कैसे वे संसार का अनुभव करते हैं और किस प्रकार उसके मन में बहुत सारे चीजों के बार में तरह–तरह के विचार जन्म लेते हैं? इन प्रश्नों को जीन पियाजे ने अपने प्रतिपादित सिद्धांत के आधार पर समझने का प्रयास किया। बच्चों का अवलोकन करते वक्त उन्होंने देखा कि बड़े बच्चे प्रश्नों को छोटे बच्चों के मुकाबले बेहतर समझ पाते थे। प्रयोगों से उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि बड़े बच्चे छोटे बच्चों से केवल ज़्यादा जानते नहीं हैं, बल्कि वे सवालों के बारे में अलग ढंग से सोचते हैं।

पियाजे के सिद्धांत को समझने के लिए आवश्यक है कि हम **स्कीमा (Schema)** की अवधारणा को समझें। यह एक मानसिक नक्शा या चित्र की तरह है जो बच्चे के ज्ञान को व्यवस्थित करता है। उदाहरण के तौर पर, छः महीने के बच्चे चीज़ों को पकड़ और छोड़ सकते हैं, पर उनमें छोड़ने की स्कीम अभी काफी साधारण होती है, जिसमें चीज़ों को छोड़ने

के लिए वे केवल अपना हाथ खोल देते हैं। एक साल की उम्र तक आते–आते वे इस स्कीम को सचेत और विविध बना लेते हैं। इस उम्र के बच्चे चीजों को फेंक सकते हैं, हवा में उछाल सकते हैं, धीरे से छोड़ सकते हैं और खूब ज़ोर से पटक सकते हैं। जल्द ही स्कीम क्रिया के स्तर से हटकर एक मानसिक रूप ले लेती है, जहाँ बच्चे कुछ करने से पहले सोच सकते हैं, तय कर सकते हैं।

पियाजे के अनुसार समझ का निर्माण यानि स्कीमा के सम्बंध में दो महत्वपूर्ण प्रक्रियाओं की चर्चा करते हैं– आत्मसातीकरण (Assimilation) और समायोजन (Accommodation)। ये क्या हैं, आइए उदाहरण से समझते हैं।

Piaget's Stages of Cognitive Development

Typical Age Range	Description of Stage	Developmental Phenomena
Birth to nearly 2 years	*Sensorimotor* Experiencing the world through senses and actions (looking, touching, mouthing)	•Object permanence •Stranger anxiety
About 2 to 6 years	*Preoperational* Representing things with words and images but lacking logical reasoning	•Pretend play •Egocentrism •Language development
About 7 to 11 years	*Concrete operational* Thinking logically about concrete events; grasping concrete analogies and performing arithmetical operations	•Conservation •Mathematical transformations
About 12 through adulthood	*Formal operational* Abstract reasoning	•Abstract logic •Potential for moral reasoning

मौजूदा स्कीमा के आधार पर नए अनुभवों की समझ बनाना या उनका वर्गीकरण आत्मसातीकरण (Assimilation) करना कहलाता है। उदाहरण के तौर पर जब एक बच्ची जानने लगती है कि गाय की चार टांगें व एक पूंछ होती है, और उसके बाद जब वह घोड़े को देखती है तब वह घोड़े को भी 'गाय' कहकर ही पुकारती है। इसे प्रक्रिया को पियाजे आत्मसातीकरण (Assimilation) कहते हैं जहों ये कोई नई स्कीमा का निर्माण नहीं हुआ, अपितु पहले से मौजूद स्कीमा की सूची में नयी सूचना को समाहित करने या फिट करने करने की कोशिश होती है।

लेकिन, जब बच्ची जानने लगती है कि गाय और घोड़े में अन्तर होता है। गाय के सींग होते हैं व अलग आवाज निकालती है आदि तब नई जानकारी से उसके पहले की स्कीमा के स्वरूप में बदलाव आ जाता है। इसे समायोजन (Accommodation) कहते हैं, या अनुकूलन करना कहते हैं। पियाजे के अनुसार, आत्मसातीकरण और समायोजन, दोनो एक–दूसरे के बिना अस्तित्व में नहीं रह सकते। दोनो एक–दूसके के पूरक हैं। आईए , अब हम पियाजे द्वारा दिए गए संज्ञानात्मक विकास के चार चरणों को समझने का प्रयास करते हैं, जो निम्नलिखित हैं :

पियाजे के प्रतिपादित सिद्धांत की चार अवस्थाए		अवस्थाओं का आयु–वर्ग
संवेदी–क्रियात्मक अवस्था	Sensory motor stage	जन्म से 2 वर्ष
पूर्व–संक्रियात्मक अवस्था	Pre-Operational stage	2–7 वर्ष
मूर्त–संक्रियात्मक अवस्था	Concrete Operational stage	7–11 वर्ष
औपचारिक संक्रियात्मक अवस्था	Formal Operational stage	11 से ऊपर

1. संवेदी–क्रियात्मक अवस्था (जन्म से 2 वर्ष तक) (Sensory Motor Stage) :

जन्म से लेकर 2 वर्ष तक के बच्चे में कई बदलाव आते हैं। संवेदी क्रियात्मक अवस्था के शुरूआत के दौरान बच्चों का पूरा ध्यान प्रत्यक्ष/निकटतम ज्ञानेन्द्रियों और मनोगत्यात्मक अनुभवों पर होता है जो अनायास ही हो जाते हैं। शुरुआती महीनों में बच्चा खुद में व बाहरी दुनिया के बीच कोई अंतर नहीं कर पाता। आठवें माह के आस–पास बच्चा यह समझने लगता है कि उसमें और आस–पास दिखने वाली चीज़ें और लोग उससे **भिन्न (differentiation)** हैं। इस दौरान बच्चे कई ऐसे संकेत देते हैं जिससे पता चलता है कि वे आस–पास के वातावरण से अंतक्रिया करना चाहते हैं। वे ऐसी क्रिया को बार–बार दोहराते हैं जिसमें उसको मजा आता है। उदाहरण के लिए जब कोई बच्चा किसी चीज़ को अनायास पैर मारता है और इसका पहली बार

अनुभव करता है कि उसकी इस क्रिया से आस–पास की दुनिया में बदलाव होता है तो वह इस क्रिया को बार–बार दोहराने की कोशिश करता है। उसके बाद बच्चा उसके पास रखी चीज़ों को बार–बार पैर मारता है ताकि वह हिलने लगें। परिणामस्वरूप, ऐसी क्रिया जो अचानक से पहली बार हुई, बाद में मजबूत होकर स्कीमा का रूप ले लेती है। इससे यह समझ आता है कि इस अवस्था में बच्चे इस बीच में संबंध बिठा लेते हैं कि उनके द्वारा **क्रिया (movement)** करने से आस–पास की चीज़ों पर प्रभाव पड़ता है। दो वर्ष तक आते–आते बच्चों में आंतरिक छवियाँ विकसित होने लगती हैं जिसके कारण बच्चे चीज़ों को दर्शाने के लिए प्रतीकों (Images), शब्दों या **क्रियाओं (actions)** का सहारा लेने लगते हैं। इस कारण बच्चों में **प्रतिकात्मक सोच (symbolic thought)** विकसित होने लगती है।

पियाजे ने इसे बौद्धिक क्रियाओं का पहला स्तर माना है। इसे समझने के लिए पियाजे द्वारा दिया गया उसकी अपनी 1 साल 8 माह की बेटी जेकलिन का उदाहरण देखते हैं। जब उसकी बच्ची जैकलीन के दोनों हाथों में घास थी तब वह दरवाजा खोलने की कोशिश कर रही थी। पहले वह दरवाजा खोलने के लिए उसकी चिटकनी की तरफ अपना हाथ बढ़ाती, लेकिन तुरंत ही वह महसूस करती कि घास को जमीन पर रखे बगैर वह ऐसा नहीं कर पाएगी। इसलिए उसने पहले घास को जमीन पर रखा, दरवाजा खोला, घास जमीन से उठाई और फिर अन्दर घुसी। लेकिन ऐसा जब उसने दरवाजा अन्दर से खोलते समय किया तो समस्या अधिक पेचीदा हो गई। जैसे ही उसने घास को नीचे रखने के बाद दरवाजा खोला तो वह यह समझ गई कि दरवाजा खोलने पर घास खिसक कर बिगड़ जाएगी क्योंकि उसने उसे दरवाजे और दहलीज के बीच में रखा है। इसलिए वह घास को दरवाजे के पास से हटाकर दूसरी तरफ रख देती है।

इस दौरान वह चीज़ों के बीच में संबंध को समझने लगती है। जेकलिन की ये प्रतिक्रिया यह दर्शाती है कि वह अपने दिमाग में दरवाजे और घास की मानसिक छवियों की मदद से समस्या का समाधान करती है। यहाँ वह **इन्द्रियों (sensory)** और अंग **संचालन (motor)** द्वारा जांच पड़ताल न करके मानसिक क्रिया करती है। इस अवस्था तक आते–आते बच्चे समस्याओं को बिना प्रयास और त्रुटि (trial and error) के हल

करना सीख जाते हैं। अब बच्चा सिर्फ मौजूद वातावरण पर ही निर्भर नहीं होता है। वह जो चीजें मौजूद नहीं है उनकी मानसिक छवि भी बना सकता है।

गतिविधि

1. अपने आस–पास के

2. वर्ष तक के बच्चों को देखिए और बताइए कि उनके व्यवहार में क्या–क्या बदलाव दिखाई देते हैं? देखे गए व्यवहारों की सूची बनाइए।

2. पूर्व–संक्रियात्मक अवस्था (2–7 वर्ष) (Pre-operational stage):

जैसा हमने ऊपर पढ़ा संवेदी क्रियात्मक अवस्था के अन्त तक बच्चों में **सांकेतिक विचार (symbolic thought)** उभरने शुरू हो जाते हैं। पूर्व–संक्रियात्मक अवस्था इसी क्षमता पर आधारित होती है। बच्चों में प्रतीक (शब्दों, चिन्हों, चित्रों आदि) बनाने व इस्तेमाल करने की क्षमता विकसित हो जाती है जो बच्चों को अगली अवस्था में मानसिक संक्रियाएं करने में मदद करती है। इसे उदाहरण से समझें तो इस अवस्था में बच्चे 'साइकिल' शब्द या साइकिल के चित्र का इस्तेमाल असली साइकिल जो वर्तमान में वहाँ मौजूद नहीं है, को दर्शाने के लिए करने लगते हैं। इस अवस्था के बच्चे मन में तर्क करके भी सोचने लगते हैं लेकिन उनका सोचना आत्मकेन्द्रित व एकांगी होता है।

इस अवस्था में भाषा विकास बहुत तीव्र गति से होता है जिसका कारण बच्चों की मानसिक क्रियाओं में विकास माना गया। शब्दों में सोचने से हम अपने तात्कालिक अनुभवों की सीमाओं के पार आ सकते हैं और एक ही समय में भूत, वर्तमान और भविष्य के बारे में विचार कर सकते हैं। उदाहरण के लिए जब छोटे बच्चे यह समझने लगते हैं कि जब वस्तु हमारे सामने नहीं होती तब भी उसका स्थायित्व दुनिया में बना रहता है तब वे वस्तुओं के न दिखने पर गायब होना बताने वाले शब्दों, जैसे कि सब गये/गयी का प्रयोग करते हैं। जब वे अचानक समस्याओं

को हल कर लेते हैं तब वे सफलता व विफलता व्यक्त करने वाले शब्द इस्तेमाल करते हैं। जैसे आहा एवं अरे।

भाषा की इस शक्ति के बावजूद, पियाजे नहीं मानते थे कि यह बच्चों के संज्ञानात्मक विकास में उच्चतर स्तर पर कोई प्रमुख भूमिका निभाती है। इसके बजाय उनका दावा था कि इंद्रिक एवं चालन गतिविधियों के फलस्वरूप अनुभव की आंतरिक छवियाँ निर्मित हो जाती हैं, जिन्हें फिर बच्चे शब्दों से नामांकित कर देते हैं। अर्थात् उन पर शब्दों के लेबल लगा देते हैं। ये विचार मूक बधिर बच्चों पर संज्ञानात्मक क्षमताओं पर हुए एक अध्ययन के द्वारा भी स्पष्ट होता है, उनकी भाषा सीमाएं होने के बावजूद भी वे बच्चे सोचते हैं और समस्याओं को हल भी कर पाते हैं। पियाजे मानते थे कि भाषा, विचारों को आकार देने की तुलना में विचार, भाषा को आकार देने में ज्यादा समर्थ होते हैं।

काल्पनिक खेल, नकल करना और अंतिम लक्ष्य वाली गतिविधियों जैसे कि सरल पहेली को हल करना आदि में भी सांकेतिक विचार व्यक्त होता है। संवेदी–क्रियात्मक अवस्था के बच्चों के खेल नाटक वास्तविक जीवन से जुड़ी स्थितियों से संबधित होते हैं। इस अवस्था में बच्चे मानसिक प्रतीकों का इस्तेमाल करते हैं जैसे कि बात करने के लिए खिलौने का टेलिफोन या चाय पीने के लिए कप का इस्तेमाल, ये नाटक बड़ों के कामों की नकल होते हैं।

हालांकि पियाजे ने पूर्व संक्रियात्मक अवस्था की दो सीमांए भी बतायी हैं, जो इस प्रकार हैं–

1. इस अवस्था के बच्चे निर्जीव वस्तुओं को सजीव समझते हैं जैसे– कार, पंखा, हवा, बादल सभी उसके लिए सजीव होते हैं। उन्हें ऐसा लगता है चंद्रमा उनका पीछा कर रहा है, गुड़िया का सिर दर्द हो रहा है, आदि। इसी अवस्था के दौरान बच्चों के लिए काल्पनिक व वास्तविक घटनाओं में अन्तर करना मुश्किल होता है। डरावने सपनों पर वे इस तरह की प्रतिक्रिया जाहिर करते हैं जैसे वे सच में घटित हुए हों।
2. साथ ही इस अवस्था के बच्चे सिर्फ अपने ही विचार को सही मानते हैं। उसे कुछ इस तरह का विश्वास हो जाता है कि दुनिया की अधिकतर चीज़ें उसके इर्द–गिर्द चक्कर लगाती रहती हैं। जैसे वह तेजी से दौड़ता है तो सूर्य भी तेजी से चलना प्रारंभ कर देता है उसकी गुड़िया

वहीं देखती है जो वह देख रहा है आदि। पियाजे ने इसे **आत्मकेन्द्रिता (egocentrism)** कहा है। पियाजे के अनुसार, चूंकि छोटे बच्चे आत्मकेन्द्रियपन के कारण भौतिक घटनाओं को मानवीय अभिप्रायों से युक्त कर देते हैं इसलिए स्कूल पूर्व के वर्षों में जादुई सोच आम होती है। पियाजे ने यह भी बताया की जैसे–जैसे बच्चे का सम्पर्क अन्य बच्चों एवं भाई–बहनों से बढ़ता जाता है, उसके चिंतन में आत्मकेन्द्रिता की प्रवृति कम होती जाती है।

लगभग **4 से 7** साल के बीच बच्चों का चिंतन एवं तर्क क्षमता पहले से अधिक परिपक्व हो जाती है जिसके कारण वह साधारण मानसिक प्रक्रियाएँ जैसे चीज़ों को क्रमबद्ध करना, वर्गीकृत करना आदि पहले से थोड़े ज्यादा सटीक ढंग से कर पाता है। परन्तु इन मानसिक प्रक्रियाओं के पीछे छिपे नियमों को वह नहीं समझ पाता और वह यह नहीं बता पाता कि ऐसा उसने क्यों किया।

उदाहरण के तौर पर यदि इस उम्र के बच्चों को कुछ तीलियों को किसी निश्चित क्रम में जमाने को कहा जाए तो उन्हें यह काम करने में मुश्किल महसूस होती है। पियाजे ने बच्चों को अलग–अलग लम्बाई की तीलियों को सबसे लम्बी से सबसे छोटी के क्रम में जमाने के लिए कहा।

कुछ बच्चे इस काम कों बिल्कुल नहीं कर पाए। कुछ बच्चों ने तीलियों को ठीक ढंग से जमाया लेकिन पूरी तीलियों को क्रम से नहीं जमा सके। कुछ बच्चों ने छोटी वाली तीलियों को एक समूह में और लम्बी तीलियों को इस तरह से जमाया कि ऊपर से दिखने पर वह क्रम से जमी दिखती थी लेकिन नीचे से उनमें कोई क्रम नहीं था। (चित्र में देखें)

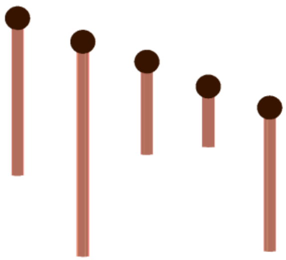

इस अवस्था के बच्चे परिस्थिति के किसी एक पक्ष पर ध्यान केंद्रित करते हैं और अन्य महत्वपूर्ण बातों की उपेक्षा कर देते हैं।

पियाजे ने यह भी पाया कि इस अवस्था के बच्चों को कोई समस्या दी जाए तो वह उस समस्या को हल करने के लिए अलग–अलग चरणों को क्रमबद्ध रूप से कर लेते हैं लेकिन समस्या के दौरान आए चरणों को (आखिरी से शूरूआती चरण) मन में नहीं सोच पाते। पियाजे ने इसे **विपरीत प्रक्रिया (reversibility)** का नाम दिया था। जैसे – नीचे से ऊपर पहाड़ी पर जाना या पहाड़ी से नीचे आता। क्या ज्यादा दूर है?

मूर्त संक्रियात्मक अवस्था (7 से 11 वर्ष तक) (The Concrete operational stage):

मूर्त संक्रियात्मक अवस्था में बच्चों के सोचने के तरीकों में फिर से महत्वपूर्ण बदलाव आता है। इसमें विचार पहले की अपेक्षा अधिक तर्क संगत, लचीला और व्यवस्थित होता है व छोटे बच्चों के बजाय बड़ों की विचार प्रक्रिया से अधिक मिलता जुलता है। इस अवस्था को मूर्त इसलिए कहा गया है क्योंकि यह बदलाव उनके आस–पास दिखने वाली मूर्त चीज़ों पर आधारित होता है व संक्रियात्मक इसलिए क्योंकि ये सब मानसिक क्रियाएँ हैं। विपरीत प्रक्रिया को समझ पाने के कारण इस अवस्था में बच्चों की सोच में भी लचीलापन आता है।

इस अवस्था में बच्चे मानसिक क्रिया को विपरीत क्रम में भी कर सकते हैं। मूर्त संक्रियात्मक अवस्था के बच्चों में वर्गीकरण एवं क्रम से जमा पाने की क्षमता में भी मुख्य परिवर्तन दिखता है। बच्चे किसी भी एक लक्षण– जैसे रंग, आकार, माप के आधार पर वस्तुओं का वर्गीकरण करने की योगयता का विकास कर लेते हैं। उदाहरण के तौर पर अलग–अलग रंग की और आकार की 12 लकड़ी के गुटकों में से इस अवस्था का बच्चा आकार एवं रंग के आधार पर गुटकों को छांट लेता है।

किसी प्रक्रिया को मानसिक तौर पर विपरीत करने की क्षमता इस अवस्था के बच्चों को यह समझने में मदद करती है कि किसी एक समूह की चीज़ों का वर्गीकरण एक से ज्यादा तरीकों से किया जा सकता है। जैसे कि बच्चे यह समझ सकें कि बटनों के रंग के आधार पर वर्गीकृत करने के पश्चात् अन्हें आकार व बटनों में कितने छेद हैं आदि के आधार पर पुनः वर्गीकृत किया जा सकता है।

पियाजे ने पाया कि इस अवस्था के बच्चों की स्थान विस्तार की समझ पूर्व संक्रियात्मक अवस्था के बच्चों से अधिक सही होती है। इसे बच्चों में

स्थानिक सोच (Spatial Reasoning) कहकर सम्बोधित किया जाता है। उदाहरण के तौर पर – दिशाओं की तथा नक्शों की समझ।

छह साल के बच्चे मार्ग को स्वयं चलकर तय करने के बाद ही अधिक व्यवस्थित दिशा निर्देश दे पाते हैं, या फिर तब, जब उन्हें बीच–बीच में खासतौर पर दिशाओं की याद दिलाई जाये, अन्यथा उनका ध्यान केवल मार्ग के अंतिम बिन्दु पर ही रहता है, बिना इस बात का ठीक–ठीक विवरण दिये कि वहां तक कैसे पहुँचा जा सकता है। लगभग 8 से 10 साल के बच्चे किसी व्यक्ति को एक जगह से दूसरे जगह जाने वाले रास्ते के सही दिशा निर्देश दे सकते हैं।

बच्चों द्वारा अपने परिचित बड़े स्थान–विस्तारों, जैसे कि अपने मोहल्लों या स्कूलों के मानसिक छवियों को संज्ञानात्मक नक्शे कहा जाता है। किसी बड़े स्थान विस्तार का नक्शा बनाने के लिए दृश्य को मानसिक रूप से ग्रहण करने के काफी अधिक कौशल की ज़रूरत पड़ती है, क्योंकि समूचे स्थान विस्तार को एक साथ नहीं देखा जा सकता। मध्य बचपन के अंत तक आते–आते बच्चे एक बड़े स्थान विस्तार की पूरी संरचना मन में बना लेते हैं, जिसमें विशेष स्थान चिन्ह और विभिन्न मार्ग परस्पर जुड़े रहते हैं और उन्हें पढ़ भी लेते हैं, तब भी जब नक्शे की दिशा उस वास्तविक स्थान से भिन्न हो जिसे वह निरूपित करता है। इसे **संज्ञानात्मक नक्शा (Cognitive Map)** कहा जाता है।

साथ ही, पियाजे का यह भी मानना है कि इस अवस्था के बच्चे चीज़ों के संग्रहों को अलग आधार पर वर्गीकृत कर पाते हैं और इसमें आनंद लेते हैं। उदाहरण के लिए 11 साल के मनीष के पास अखबार से काटी हुई ढेरों खेल जगत की खबरों का संग्रह है जिन्हें वह खिलाड़ियों, देशों, खेलों के आधार पर बाँट सकता हैं और 9 साल की रमा को गर्व है अपने भिन्न प्रकार के कंचों के संग्रह पर जिन्हें वह उनके रंग, माप व नए और पुराने के हिसाब से वर्गीकृत करती है।

औपचारिक संक्रियात्मक अवस्था (11 वर्ष तथा ऊपर) (Formal Operational stage):

पियाजे के अनुसार लगभग 11 वर्ष की उम्र में बच्चे औपचारिक संक्रियात्मक अवस्था में प्रवेश करते हैं। इस अवस्था में वे अमूर्त, वैज्ञानिक ढंग से सोचने की क्षमता विकसित कर लेते हैं। जहाँ मूर्त संक्रियात्मक अवस्था के बच्चे

'वास्तविक संसार के साथ संक्रियाएं करते हैं वहीं औपचारिक सक्रियात्मक अवस्था के किशोर 'संक्रियाओं के साथ संक्रिया' कर सकते हैं। दूसरे शब्दों में विचार करने के लिए उन्हें अब बाहर की मूर्त वस्तुओं और घटनाओं की जरूरत नहीं रह जाती, बल्कि वे आंतरिक चिन्तन करके नए और अधिक तार्किक नियम बनाने में समर्थ हो जाते हैं। इस अवस्था में वह शाब्दिक परिकल्पनाओं के आधार पर तर्क करते हैं। ऐसा वह विभिन्न परिस्थितियों में तार्किक संबंध देख कर या अमूर्त वाक्यों से निर्मित तर्क के आधार पर कर पाते हैं। उदाहरण के तौर पर बच्चे नीचे दिए वाक्यों के बीच में अमूर्त तौर पर तार्किक संबध बैठाकर निष्कर्ष पर पहुँच जाते हैं।

1. हर दो पेंसिलों के साथ एक शॉर्पनर आता है।
2. नीना के पास 8 पेंसिल हैं।
3. नीना के पास कितने शॉर्पनर हुए?

एक किशोर जो औपचारिक संक्रियात्मक अवस्था तक पहुँच गया है इस प्रश्न का उत्तर अमूर्त तर्क के आधार पर सही देगा : अर्थात '4'।

किसी समस्या के संभावित हल निकालना औपचारिक संक्रिया का अन्य उदाहरण है। उदाहरण के लिए यदि इस अवस्था के बच्चों को कुछ वर्ण दिए जाएं जैसे ब, सा, ग, मी, र, ट, क, का और उनसे कहा जाए कि इन वर्णों से जितने शब्द बन सकते हैं, बनाओ। तो इस अवस्था के बच्चे इस काम को बहुत ही व्यवस्थित व तर्कपूर्ण ढंग से करेंगे।

यद्यपि पियाजे की दृष्टि में भाषा बच्चों के संज्ञानात्मक विकास में कोई केंद्रीय भूमिका नहीं निभाती, परंतु किशोरावस्था में इसके महत्त्व को उसने स्वीकार किया। अमूर्त विचार के लिए भाषा पर आधारित तथा अन्य प्रतीकों वाले ऐसे ढांचे जरूरी थे जो किन्हीं वास्तविक चीज़ों को निरूपित नहीं करते। उदाहरण के लिए किशोरों में यह दिखाई देता है कि वे इस प्रकार से सोच सकते हैं जब उन्हें समय, स्थान विस्तार (space) और पदार्थ के संबंधों पर विचार करना हो, या दर्शनशास्त्र और सामाजिक अध्ययन में न्याय तथा स्वतंत्रता के बारे में सोचना हो।

किशोरों की अपने स्वयं के विचारों पर सोचने की क्षमता का मतलब है कि वे स्वयं के बारे मे अधिक सोचते हैं। पियाजे की धारणा थी कि इस अवस्था के साथ आत्म–केंद्रीकरण का एक नया रूप आता है, जो स्वयं के तथा दूसरों के अमूर्त दृष्टिकोणों में फर्क नहीं कर पाता। पियाजे के सिद्धांत को

मानने वाले विचारकों ने सुझाया कि इसके परिणाम स्वरूप अपने और दूसरों के बीच के संबंधों की दो विकृत छवियां प्रगट होती हैं। पहली है **काल्पनिक श्रोता समूह (imaginary audience)** किशोरों को विश्वास होता है कि वे सभी लोगों के ध्यान और फिक्र का केंद्र हैं। इसके फलस्वरूप वे अत्यंत आत्म–चिंतित (self conscious) और लज्जित होने से बचने की भरसक कोशिश करते हैं। इसलिए माता–पिता या शिक्षक की किसी भी आलोचनात्मक टिप्पणी उन्हें बेहद अपमानजनक लग सकती है।

दूसरी संज्ञानात्मक विकृति है **व्यक्तिगत/निजी गाथा/महाछवि** चूंकि किशोरों को यकीन होता है कि दूसरे उनका निरीक्षण कर रहे हैं, और उनके बारे में सोच रहे हैं, इसलिए वे खुद के महत्त्व को बढ़ा–चढ़ाकर देखने लगते हैं। उन्हें लगता है कि वे विशिष्ट और अनोखे हैं। अनेक किशोर/किशोरियां कभी अपने को कीर्ति के शिखरों पर पहुंचता हुआ देखते हैं, तो कभी अपने को हताशा की अतल गहराइयों में पाते हैं।

अमूर्त विचार किशोरों को यथार्थ से आगे जाकर सोचने की सामर्थ्य देता है, इसलिए आदर्श और परिपूर्णता की कल्पना के द्वार उनके लिए खुल जाते हैं। परिणामस्वरूप, वे एक ऐसे आदर्श संसार की भव्य कल्पनायें करते हैं, जिसमें कोई अन्याय, भेदभाव या अशोभन व्यवहार नहीं होगा। किशोरों के आदर्शवादी दृष्टिकोण और वयस्कों के अधिक यथार्थवादी दृष्टिकोण का अंतर माता–पिता और बच्चे के बीच तनाव पैदा करता है। कुल मिलाकर किशोरों का आदर्शवाद और आलोचना लाभकारी है। एक बार जब किशोर यह देखने लगते हैं कि दूसरे व्यक्तियों में क्षमतायें और कमजोरियाँ दोनों होती हैं, तो उनमें सामाजिक परिवर्तन के लिए रचनात्मक ढंग से काम करने और स्वस्थ तथा टिकाऊ संबंध बनाने की ज्यादा काबिलियत आ जाती है।

12–13 साल के बच्चे समस्या समाधान के लिए या सवालों के उत्तर खोजने में जो तरीका काम में लेते हैं, वह वैज्ञानिक जांच पड़ताल का तरीका है। समस्या के आधार पर पहले सभी संभव हल सोच लेना और फिर एक–एक करके उन्हें आजमा कर जांचना। इसे समझने के लिए अलग–अलग उम्र के स्कूली बच्चों को कई लम्बाई की रस्सियां और अलग–अलग वजन की लटकाने की वस्तु दी गईं और पूछा गया कि पेन्डुलम की गति प्रभावित करने वाला कारक कौन सा है। औपचारिक अवधारणात्मक काल के छात्र–छात्राएं कम से कम चार संभावना (जैसे रस्सी की लम्बाई, वस्तु का

वज़न, ऊँचाई जहाँ से वस्तु छोड़ी गई और छोड़ते समय यदि उसको धक्का दिया जाए) सोचेंगे और फिर एक–एक को जांचेंगे।

इस प्रकार यह स्पष्ट हुआ कि जैसे–जैसे बच्चे बड़े होते हैं, उसकी मानसिक प्रक्रियाओं में एक गुणात्मक परिवर्तन होता जाता है। यह परिवर्तन, संज्ञानात्मक विकास की कुछ अवस्थाओं में समझा जा सकता है। इस रूपरेखा के अनुसार, पाठ्यक्रम और कक्षाकक्ष प्रक्रिया इस प्रकार संगठित की जानी चाहिए जो बच्चे को उन परिस्थितिओं की ओर ले जाएँ जिनमे संज्ञानात्मक विकास की प्रक्रिया एवं संतुलन की खोज के अवसर हो।

पियाजे के संज्ञानात्मक सिद्धांत के शैक्षिक निहितार्थ एवं समालोचनाः

पियाजे का शिक्षा पर विशेष रूप से प्रारंभिक और मध्य बचपन के दौरान शिक्षा पर बहुत प्रभाव पड़ा है। शिक्षकों को यह सिद्धान्त अध्यापन कार्य में विशेष दिशा प्रदान करता है। इस सिद्धान्त की शैक्षिक उपयोगिता निम्न प्रकार है –

1. पियाजे के सिद्धान्त से प्रेरित शिक्षक / शिक्षिकाएं बच्चों को परिवेश के साथ स्वतः स्फूर्त / सहज रूप से क्रिया करते हुए चीजों को स्वयं खोज करने के लिए प्रेरित करते हैं। पहले से तैयार ज्ञान को शाब्दिक रूप से प्रस्तुत करने के बजाय, शिक्षक ऐसी विविध गतिविधियों की सुविधा प्रदान करते है जो खोजने को बढावा देती है, जैसे कला, पहेलियाँ, मेज वाले खेल, विभिन्न परिधान, चीजें बनाने वाले गुट्टे, नापने के औजार, संगीत, वाद्य आदि।

2. शिक्षक बच्चों को ध्यानपूर्वक देखते हैं, उनकी बातें सुनते हैं और उन्हें ऐसे अनुभव सुलभ कराते हैं, जिनमें वे नई खोजी गई योजनाओं का अभ्यास कर सकें। शिक्षक बच्चों पर कोई नये

कौशल नहीं थोपते जब तक कि विद्यार्थियों द्वारा उनके प्रति रूचि और तैयारी नहीं दिखाई जाती इसका अर्थ यह हुआ कि शिक्षक को शिक्षार्थी की मदद अनावश्यक रूप से हर कदम पर नहीं करनी चाहिए क्योंकि ऐसा करने पर उनमें स्वायतता तथा आत्म विश्वास जैसे गुणों का विकास नहीं होता है जो संज्ञानात्मक विकास में एक बाधक के रूप में साबित हो सकता है।

3. मूर्त संक्रियात्मक अवस्था में अर्थात 7 से 11 साल की आयु में यदि शिक्षक जटिल मानसिक संक्रियाओं (संरक्षण, सम्बन्ध तथा वर्गीकरण) पर अधिक बल दें तो इससे उनके बौद्धिक विकास का स्तर अधिक तेजी से बढता है जिससे बच्चों में सृजनात्मक, आविष्कारक तथा आलोचनात्मक दृष्टिकोण का विकास होता है।

4. शिक्षण में खेल विधियों/माध्यमों का उपयोग किया जाना चाहिए क्योंकि पियाजे के अनुसार इससे बच्चों में संज्ञानात्मक सम्पन्नता विकसित होती है जो उसके संज्ञानात्मक विकास का मूल आधार बनता है।

5. पियाजे का सिद्धान्त यह मानकर चलता है कि सभी बच्चे विकास के समान अनुक्रम से गुजरते है लेकिन इनकी गति अलग–अलग होती है। इसलिए शिक्षकों को अलग–अलग विद्यार्थियों के लिए और छोटे–छोटे समूहों के लिए गतिविधियों की योजना बनाना चाहिए, ना कि एक साथ पूरी कक्षा के लिए। इसके अतिरिक्ति शिक्षक शैक्षणिक प्रगति का मूल्यांकन करते समय हर बच्चे की तुलना उसी की पिछली स्थिति से करें।

स्पष्ट है कि पियाजे के संज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्त का अत्यधिक शैक्षिक महत्व है। इससे शिक्षकों को अध्यापन कार्य के लिए स्वयं भी अच्छा निर्देश मिलता है साथ ही शिक्षार्थियों के लिए भी अधिक उपयोगी सुझाव मिल जाते हैं। इसके साथ ही, पियाजे के इस सिद्धांत के कई आलोचनात्मक पक्ष भी है, जिनकी चर्चा यहां नहीं की गयी है। आप उन आलोचनात्मक पक्षों का भी पता लगाएं।

गतिविधि

पियाजे की अवस्थाओं के अनुसार कक्षा–2 व कक्षा–7 के बच्चों के सोचने के तरीके अलग–अलग होते हैं। क्या शिक्षक के लिए इन्हें पढ़ाने के तरीकों में कुछ बदलाव होगा। अपने साथियों के साथ चर्चा कर, सुझाव दें।
पियाजे द्वारा सुझाए गए विभिन्न अवस्थाओं की विशेषताओं को संक्षेप में चार्ट पेपर पर प्रस्तुत करें।

3.5 संज्ञानात्मक विकास और बुद्धि की अवधारणा

हम अक्सर अपनी बातचीत में किसी के लिए तेज, होशियार, समझदार, इंटेलिजेंट, बेवकूफ, मूर्ख जैसे शब्दों का इस्तेमाल करते हैं पर, इन शब्दों के अर्थ को लेकर हम शायद ही कभी गंभीर चिंतन करते हैं। किसी व्यक्ति को हम तेज क्यों कह रहे हैं? किसी के होशियार कहने का क्या अर्थ है? कोई इंटेलिजेंट या मूर्ख किस प्रकार है? क्या जिसे हम होशियार या इंटेलिजेंट कहते हैं, वह हर प्रकार के काम में होशियार है? क्या इन शब्दों के अर्थ समय, जगह और उम्र के आधार पर बदलते रहते हैं? क्या इन शब्दों का संबंध बुद्धि की अवधारणा से है? कैसे? आओ समझने का प्रयास करें।

गतिविधि

- आप अपने आस–पास के 5–10 व्यक्तियों की सूची बनाइए जिनको आप बुद्धिमान मानते हैं।

- सूची बनाने के साथ–साथ आप उन व्यक्तियों की विशेषताओं/कार्यों का भी उल्लेख करें जिसके आधार पर आपने उनको बुद्धिमान माना है। इसे तालिका बनाकर प्रदर्शित करें।
- फिर यह विश्लेषण करें कि क्या सभी व्यक्तियों में बुद्धि संबंधी विशेषताएं एक जैसी हैं या अलग अलग।

उपरोक्त गतिविधियों एवं उनके विश्लेषण से हम पाएंगे कि समाज में बुद्धि की अवधारणा के कई अर्थ हैं, जैसे–वह व्यक्ति बुद्धिमान है जो अन्य की तुलना में अपने काम को अच्छे ढ़ंग से कर सके, जो आनेवाली समस्याओं को उपयुक्त तरीके से सुलझा सके, जिसकी शाब्दिक क्षमता अधिक हो, जिसमें सामाजिक व्यवहार कुशलता हो आदि। बुद्धि के अर्थ को लेकर समाज में कई तरह की विचारधाराएं हैं। किसी के दृष्टिकोण से गांव का वह किसान बहुत बुद्धिमान है जो अपने खेतों में नवीन एवं उपयुक्त तकनीक अपनाकार अच्छी फसल उगाता है, वहीं किसी और के दृष्टिकोण से उसे भाषा और रहन–सहन के आधार पर कम बुद्धिमान माना जाता है। इसी तरह किसी की नज़र में स्कूल न जानेवाले बच्चे की तुलना में स्कूल जाने वाले बच्चे को अधिक होशियार माना जाता है।

हर समाज में अपनी संस्कृति एवं कार्य के आधार पर बुद्धि को लेकर कुछ न कुछ धारणाएं जरूर हैं जिसके आधार पर बुद्धि को परिभाषित किया जाता है। आइए इन संदर्भों में बुद्धि की अवधारणा की शुरूआत कैसे हुई और इसकी जरूरत क्यों पड़ी, इसे समझें।

3.5.1 बुद्धि की अवधारणा का ऐतिहासिक संदर्भ

व्यक्ति की बुद्धि और उसके विकास को समझने का प्रयास मनोवैज्ञानिक सदियों से करते आ रहे हैं। सभी सस्कृतियां इस बात को स्वीकार करती हैं कि बुद्धि के संदर्भ में व्यक्तिगत अन्तर होते हैं। इनको ध्यान में रखते हुए उन्नीसवीं शताब्दी के अंत से बुद्धि परीक्षणों के द्वारा बुद्धि को मापने की शुरूआत हुई। सबसे पहले बुद्धि परीक्षण पर कार्य यूरोप और अमेरिका में शुरू हुआ क्योंकि वहाँ पर सबके लिए शिक्षा (सार्वभौमिक शिक्षा) की शुरूआत हो गई थी, जिसका अर्थ था–वहां के हर बच्चे को अनिवार्य रूप से किसी निश्चित कक्षा तक स्कूल में शिक्षा देना। इसके कारण वे बच्चे भी स्कूल में प्रवेश लेने लगे जो पहले कभी स्कूल नहीं गए थे और बच्चों की

कक्षागत विविधता बहुत बढ़ने लगी। एक कक्षा में ही बच्चों के सीखने की गति में शिक्षकों द्वारा भारी अंतर महसूस किया जाने लगा। इस कारण, उन्हें ऐसे परीक्षणों की आवश्यकता हुई जिससे बच्चों को उनकी सीखने की क्षमता के आधार पर अलग–अलग किया जा सके और वे उनपर विशेष तरीके से ध्यान दे सकें। इन आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु कुछ परीक्षण तैयार किये गये जिनमें फ्रांस के मनोवैज्ञानिक ऐल्फर्ड बिने और उसके सहयोगी साइमन द्वारा 1905 में विकसित पहला बुद्धि परीक्षण महत्वपूर्ण है। यह एक प्रकार का वैयक्तिक बुद्धि परीक्षण (Individual Intelligence Test) था। इसमें कुछ प्रश्नों को पूछा गया जिसे अगले पृष्ठ पर दिया गया है। अपने परीक्षण में उन्होंने यह पाया कि कम उम्र के तेज़ बच्चों के उत्तर बड़े बच्चों जैसे थे। जिसके आधार पर उन्होंने बच्चों की मानसिक उम्र को जांचना शुरू किया। कई सालों तक इस तरह के परीक्षण बहुत लोकप्रिय रहे। लेकिन, धीरे–धीरे यह प्रतीत होने लगा कि इन परीक्षणों में हमेशा एक विशेष परिवेश के बच्चे बेहतर करते थे और एक खास परिवेश के बच्चे खराब प्रदर्शन करते थे। यानि वो बच्चे जो भिन्न संस्कृति और आर्थिक परिवेश से आए थे वे इन परीक्षणों में कम अच्छा कर पाते थे। इस प्रकार से इन परीक्षणों की शुरूआत जिस उद्देश्य के लिए की गई थी, उस पर ही प्रश्न चिन्ह लग गया। इन परीक्षणों का उपयोग यह सिद्ध करने में किया जाने लगा कि कुछ विशेष समुदाय व वर्ण से आए बच्चे जन्म से ही कम बुद्धि वाले होते हैं। इस धारणा ने न सिर्फ सामाजिक विभेद को बढ़ाया बल्कि इसका राजनैतिक फायदा भी उठाया गया। उदाहरण के तौर पर, कई देशों में गोरे लोगों (यूरोपवासी) के द्वारा काले लोगों पर शासन करने को यह तर्क देकर उचित ठहराया जाता रहा कि काले लोगों के पास कम बुद्धि होती है अतः वे अपना शासन स्वयं नहीं चला सकते। इसलिए बुद्धिमान गोरे लोगों का उनपर शासन करना सही है। दक्षिण अफ्रीका में गोरे लोगों के द्वारा अपनायी गयी रंगभेद नीति और इसके विरोध में आंदोलन करनेवाले महान नेता नेल्सन मंडेला के विषय में आपने जरूर सुना होगा। इस नीति के अंतर्गत उस देश में गोरे लोगों द्वारा काले लोगों को कई सारे अधिकारों से दूर रखा जाता था। इसके विषय में आप और पता लगाएं। विश्लेषण करने पर आप पाएंगे कि यह सिर्फ राजनैतिक आंदोलन नहीं था बल्कि मनोसामाजिक चेतना की लड़ाई भी थी।

भारतीय परिप्रेक्ष्य में भी अप्रत्यक्ष रूप से बौद्धिक क्षमता को मापने की परम्परा चली आ रही है। इसके अनुसार मापन एवं कार्य क्षमता के आधार पर

उनको कार्य सौंपा जाता था। हमारे समाज में भी इसी प्रकार से बुद्धि के आधार पर कई स्तरों पर विभाजन मिलता है। ऐतिहासिक रूप से ऐसी धारणा बना दी गई कि कुछ जातियों व वर्णों के पास अधिक बुद्धि होती है, वहीं कुछ जातियों के पास बहुत कम बुद्धि होती है। इसके कारण हमारे समाज में किसी जाति द्वारा अपने को श्रेष्ठ बताकर अन्य जातियों

पर अपना मत थोपा जाता रहा तथा जातियों के बीच ऊँच–नीच का विभेदकारी सामाजिक अंतर बना रहा।

आगे सारणी में बिने के बुद्धि परीक्षण सूची से अलग–अलग आयु वर्ग के लिए कुछ परीक्षण प्रश्नों को दिया जा रहा है।

बिने के बुद्धि–परीक्षा प्रश्न	
3 वर्ष की आयु के लिए– 1. तुम्हारी नाक, आंख ओर मुंह कहां है? 2. 2 अंकों से बनी संख्या को दोहराना। 3. 6 शब्दों से बने वाक्य को दोहराना। 4. अपना अंतिम नाम बताइए।	**8 वर्ष की आयु के लिए–** 1. 20 से 0 तक पीछे की ओर गिनने को कहना। 2. दिन और तारीखों के नाम पूछना। 3. 5 अंकों की बनी संख्या को दोहराना। 4. 9 सिक्कों को गिनवाना। 5. 4 रंगों के नाम बताना। 6. किसी गद्य–खण्ड को पढ़वाना और दो बातों को याद रखने को कहना।
4 वर्ष की आयु के लिए– 1. तुम लड़की हो या लड़का। 2. तीन अंकों की संख्याओं को दोहराओ। 3. चाभी (झमल), चाकू और सिक्का दिखाकर, ये क्या हैं?	**11 वर्ष की आयु के लिए–** 1. निरर्थक कथनो की आलोचना करवाना। 2. किसी वाक्य में 3 शब्द प्रयुक्त करवाना। 3. 3 मिनट में 60 शब्द कहलवाना। 4. अमूर्त (।इेजतंबज) वस्तुओं की परिभाषा करवाना।

	5. किसी वाक्य में बेतरतीब रखे शब्दों को तरतीब में रखवाना।
5 वर्ष की आयु के लिए– 2. वर्ग को दिखाकर उसे चित्र बनवाना। 3. धैर्य से खेल–खेलने को कहना। 4. चार सिक्कों को गिनवाना। 5. 11 शब्द–खण्डों वाले वाक्य को दोहराना।	**15 वर्ष की आयु के लिए–** 1. 7 अंकों को दोहराना। 2. एक मिनट में दिए हुए शब्द से 3 प्रकार की लय निकलवाना। 3. 26 शब्दों से बने वाक्य को दोहराना।

गतिविधि

उपर्युक्त परीक्षण प्रश्नों को पढ़ें और निम्नलिखित बिन्दुओं का विश्लेषण करके समूह में चर्चा करें :

- बिने ने बुद्धि सम्बन्धी किन–किन योग्यताओं को मापने की कोशिश की?
- क्या आपको लगता है कि बिने परीक्षण किसी विशेष वर्ग के बच्चों को बुद्धिमान और किसी अन्य वर्ग के बच्चों को ध्यान में रखकर बनाया गया है। यदि ' हाँ ' तो कैसे?

बिने–साइमन परीक्षण में भाषायी ज्ञान, गणितीय योग्यता, प्रत्यक्षीकरण, विभेदीकरण, स्मृति, तुलनात्मक योग्यता, वाचन योग्यता, आलोचनात्मक योग्यता एवं अमूर्त संकल्पनाओं को परिभाषित करना आादि योग्यताओं का मापन करने का प्रयास किया गया है। यह परीक्षण विशेष वर्ग के लिए अधिक उपयोगी था । बिने तथा साइमन के परीक्षण में बुद्धि को मानसिक आयु के रूप में मापकर अभिव्यक्त किया गया। परन्तु टरमन ने जब इसका संशोधन किया तो उससे बुद्धिलब्धि (प्फ) के सम्प्रत्य का जन्म हुआ और बुद्धि को मापने में मानसिक आयु की जगह बुद्धिलब्धि का प्रयोग होने लगा।

बुद्धिलब्धि (IQ) मानसिक आयु (MA) तथा वास्तविक आयु (Chronological age, C.A.) का ऐसा अनुपात है जिसको 100 से गुणा कर प्राप्त किया जाता है। इन परीक्षणों में व्यक्ति के प्राप्तांकों की गणना विभिन्न आयु समूहों के बच्चों के औसत प्रदर्शन के आधार पर की जाती है।

$$\text{I.Q.} = \frac{\text{Mental Age (MA)}}{\text{Chronologocal Age (CA)}} \times 100$$

आगे चलकर बुद्धिलब्धि की भी आलोचना होने लगी जिससे बुद्धि को लेकर कई अन्य सवाल खड़े हुए, जैसे– क्या बुद्धि को प्रभावित करनेवाले कारक उम्र के साथ बदलते रहते हैं? किस सीमा तक एक ही उम्र के बच्चों की बुद्धि में अन्तर हो सकता है? किस तरह के कारक इस अन्तर को स्पष्ट करते हैं? क्या आनुवांशिकता व वातावरण का बुद्धि पर प्रभाव पड़ता है? क्या बुद्धि परीक्षण के द्वारा वास्तविक तौर पर बुद्धि को मापना संभव है? इस संदर्भ में कई सिद्धांतों का विकास हुआ जिनमें से कुछ प्रमुख सिद्धांतों के बारे में यहां आगे चर्चा की जा रही है।

3.5.2 समकालीन संदर्भ में बुद्धि की सैद्धांतिक समझ

ऐतिहासिक संदर्भ में बुद्धि की जो संकल्पनाएं थी, उससे एक आशय तो निकाला ही जा सकता है कि उन्होंने बुद्धि को सिर्फ कुछ मान्यताओं के आधार पर अंकों में मापने पर जोर दिया। साथ ही बुद्धि को मापने के आधार के रूप में प्रयुक्त मान्यताएं भी पूर्वाग्रहों से ग्रस्त थीं। ऐसा नहीं है कि वे मान्यताएं पूर्णतः समाप्त हो गई। बल्कि, आज भी हम जाने–अनजाने उन मान्यताओं का प्रयोग करते हैं और आज के शिक्षकों में भी उन मान्यताओं की छाप मिलती है। आपने शिक्षकों को यह कहते सुना होगा कि ''मेरी कक्षा में सिर्फ दो–चार बच्चे ही तेज हैं बाकि सब को पढ़ाने का कोई फायदा नहीं है क्योंकि वे कभी नहीं सीख सकते'' आदि। यदि उनके इन कथनों का विश्लेषण करें तो हम पाएंगे कि वे उसी पारंपरिक स्वरूप में बच्चों की बुद्धि का मूल्यांकन कर रहे हैं जिसमें यह मान्यता प्रबल है कि जो पढ़ने में तेज है वही सबसे बुद्धिमान है। वे बुद्धि को बहुत संकुचित स्वरूप में देख रहे हैं जिसमें बच्चों की अन्य क्षमताओं को महत्व देने का

कोई स्थान नहीं है। वे यह जानते हैं कि नौ साल की सरिता जो विद्यालय में संख्या नहीं सीख पा रही है लेकिन बिना गलती किए घर का छोटा–मोटा सामान खरीदकर वही लाती है, सुरज जो विद्यालय में भाषा की कक्षा में कुछ बोल नहीं पाता है लेकिन अपने सब्जी की दुकान पर आनेवाले ग्राहकों से बात करने में उसे कोई झिझक नहीं होती है, सलमा को विद्यालय में निःशक्त बालिका के तौर पर देखा जाता है क्योंकि वह देख नहीं सकती पर संगीत के क्षेत्र में वह अन्य बच्चों से कहीं अधिक दक्ष है।

हम यह भी पाते हैं कि सीखने की क्षमता को ही बुद्धि मान लिया जाता है। सीखने की क्षमता का आकलन सीखने की गति, व्यवहारिक उपयोग या अधिक समय तक याद रखने की योग्यता आदि के आधार पर किया जाता है यदि किसी बच्चे की सीखने की गति तुलनात्मक रूप से दूसरे बच्चे से अधिक है तो उसकी बुद्धि को अधिक मान लिया जाता है। कहने का आशय यह है कि जिसमें जितनी अधिक सीखने की क्षमताऐं होती है। उसकी बुद्धि उतनी ही अधिक मानी जाती है। बुद्धि के संदर्भ में यह बात पूर्णतः संतुष्ट नहीं कर पाती है। आप अपनी कक्षाओं में ऐसे विद्यार्थियों को पाएंगे जो काफी प्रतिभावान होते हुए भी परीक्षाओं में असफल हो जाते हैं। इसका अर्थ यह नहीं है कि वे मूर्ख हैं, बल्कि हमारी परीक्षा प्रणाली में वह संभावना नहीं है कि उनकी प्रतिभाओं को बुद्धि के तौर पर आंक सके। आपने ऐसे कई उदाहरण सुने होंगे कि परीक्षा में असफल रहने वाले बच्चे अच्छे खिलाड़ी, कुशल अभिनयकर्ता, अच्छे नर्तक, सृजनशील लेखक, कुशल व्यापारी, आदि हैं।

गतिविधि

विभिन्न क्षेत्रों से संबंधित एक–एक (कम से कम तीन) सफल व्यक्तियों के विषय में सूचनाएं एकत्रित करें जो औपचारिक शिक्षा में सफल नहीं हो पाए, लेकिन अपने रूचि के क्षेत्र में उन्होंने बहुत बड़ी महारत हासिल की।

अतः सवाल उठता है किक्या पढ़ाई में अच्छा होना ही बुद्धि की कसौटी है या फिर इसके अन्य आयामों को भी समान महत्व दिया जाना जरूरी है।

पहले, बुद्धि का मतलब सिर्फ इतना ही था कि बच्चा पढाई में कितना तेज है या वो किसी समस्या को कैसे सुलझाता है, किसी विषय का कितना जानकार है तथा किसी निर्णय पर कितनी जल्दी और कैसे पहुँचता है। लेकिन पियाजे के संज्ञानात्मक सिद्धांत के बाद बुद्धि की इस अवधारणा में परिवर्तन आया। पियाजे के अनुसार जो व्यवहार अपने वातावरण में समायोजन करने में मदद करे वही बुद्धिमतापूर्ण व्यवहार कहा जाता है। अपने सिद्धांत में पियाजे ने बुद्धि को मानसिक प्रक्रियाओं के विकास का ही एक स्वरूप माना है।

यदि हम बुद्धि की अवधारणा को लेकर विशिष्ट सिद्धान्तों की बात करें तो उसमें गिलफर्ड और गार्डनर के सिद्धान्त प्रमुख हैं। यहां हम केवल गार्डनर के सिद्धांत की चर्चा करेंगे जो सबसे नवीनतम है। आप अपने स्तर पर गिलफर्ड के सिद्धांत का भी अध्ययन व्यापक समझ के लिए जरूर करें।

गार्डनर का बहुबुद्धि सिद्धांत (Gardner's theory of Multiple Intilligence)

इस सिद्धांत का विकास गार्डनर द्वारा 1983 में किया गया। इस सिद्धांत में गार्डनर ने यह स्पष्ट किया कि बुद्धि का स्वरूप एकाकारकीय ना होकर बहुकारकीय होता है। गार्डनर ने मूलतः सात तरह की बुद्धि का वर्णन किया। 1998 में उन्होंने इसमें आठवा प्रकार तथा 2000 में उन्होंने नवाँ प्रकार भी जोड़ा। इस तरह से गार्डनर के अनुसार अभी बुद्धि के नौ प्रकार है जो निम्नांकित हैं :–

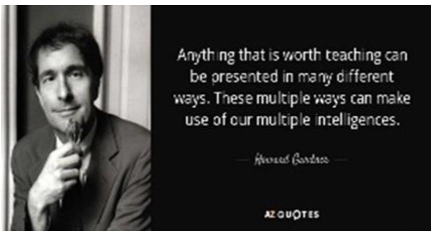

बहु–बुद्धि के प्रकार		बुद्धि से जुड़ी व्यक्तिगत विशेषता
1	भाषायी बुद्धि Linguistic Intelligence	भाषायी बुद्धि में वाक्यों तथा शब्दों के बोध क्षमता, शब्दावली, शब्दों के क्रमों के बीच के संबंधों को पहचानने की क्षमता आदि सम्मिलित होती है। लेखक, साहित्यकार, कवि आदि में यह बुद्धि उच्च स्तरीय पाई जाती है।
2	तार्किक–गणितीय बुद्धि Logical Mathematical Intelligence	इस बुद्धि में तर्क करने की क्षमता, गणितीय समस्याओं का समाधान करने की क्षमता, अंकों के क्रम (Sequence) के पीछे छिपे संबंध को पहचानने की क्षमता, सादृश्यता क्षमता (परिस्थितियों एंव समस्याओं में समानता देख पाना) आदि सम्मिलित होते हैं। किसी के व्यवहार में आये अकस्मात परिवर्तन को तर्क द्वारा समझना, गणितीय समस्याओं का समाधान आदि।
3	स्थानिक बुद्धि (स्थान संबंधी) Spatial Intelligence	इसमें स्थानिक चित्र को मानसिक रूप से परिवर्तन करने की क्षमता तथा स्थानिक कल्पना करने की क्षमता आदि सम्मिलित होती है। जैसे–देखे गये स्थान को मानचित्र द्वारा प्रस्तुत करना।
4	शारीरिक–गतिक बुद्धि Body Kinesthetic Intelligence	इस तरह की बुद्धि में अपनी शारीरिक गति पर नियंत्रण रखने की क्षमता तथा वस्तुओं को सावधानीपूर्वक एवं प्रवीण ढंग से घुमाने तथा उपयोग करने की क्षमता सम्मिलित होती है। इस तरह की बुद्धि नर्तकों तथा खिलाड़ियों में अधिक होती है, जिन्हें अपने शरीर की गति पर पर्याप्त नियंत्रण रखना होता है। उदा.– क्रिकेट खिलाड़ी, टेनिस खिलाड़ी, न्यूरोसर्जन तथा शिल्पकार आदि।
5	संगीतिक बुद्धि Musical Intelligence	इस बुद्धि में तारत्व (चपजबी) तथा लय (Rhythm) को सही–सही ढंग से समझने की क्षमता सम्मिलित होती है। इसमें संगीत सम्बन्धी सामर्थ्य एवं निपुणता विकसित करने की क्षमता भी सम्मिलित होती है। उदा. संगीतकार, गीतकार आदि।
6	अन्तःवैयक्तिक–बुद्धि	इस तरह की बुद्धि में अपने भावों एवं संवेगो को समझने एवं नियंत्रित करने की क्षमता,

	Intra personal Intelligence	उनमें विभेद करने की क्षमता तथा स्वयं के व्यवहार को निर्देशित करने में उन सूचनाओं का उपयोग करने की क्षमता आदि सम्मिलित होते है।जैसे– परिस्थितिनुसार अपने भावों एंव संवेगों को नियन्त्रित कर उपयुक्त व्यवहार करना।
7	व्यक्तिगत–अन्य बुद्धि Personal-other Intelligence	इस तरह की बुद्धि में दूसरे व्यक्तिओं की प्रेरणाओं, ईच्छाओं एवं आवश्यकताओं को समझने की क्षमता तथा उनकी मनोदशाओं (Moods) एवं चित्रप्रकृति को समझ करके किसी नई परिस्थिति में किस तरह से व्यवहार करेगा, के बारे में पूर्वकथन करने की क्षमता आदि होती है। उदा.– शिक्षक यह जान सकता है कि कौनसा बच्चा किस क्षेत्र में सफल हो सकेगा।
8	प्रकृतिवादी बुद्धि Naturalist Intelligence	इसे 1998 में जोड़ा है। इससे तात्पर्य व्यक्ति में प्रकृति (Nature) में मौजूद पैटर्न तथा सममिति को सही–सही पहचान करने की क्षमता से है। इस ढ़ंग की बुद्धि किसानों, जैव–विज्ञानी तथा वनस्पति वैज्ञानिक आदि में अधिक होती है।
9	अस्तित्ववादी बुद्धि Existential Intelligence	इसे 2000 के संशोधन में जोड़ा है। इससे तात्पर्य मानव संसार में छिपे रहस्यों को जिन्दगी, मौत तथा मानव अनुभूति की वास्तविकता के बारे में उपयुक्त प्रश्न पूछकर जानने की क्षमता से है। इस ढंग की बुद्धि दार्शनिक चिंतकों में अधिक देखने को मिलती है।

गार्डनर ने यह स्पष्ट किया है कि प्रत्येक सामान्य व्यक्ति में उपर्युक्त नौ तरह की बुद्धि होती है। परन्तु कुछ विशेष कारणों जैसे आनुवंशिकता या प्रशिक्षण के कारण किसी व्यक्ति में कोई बुद्धि अधिक विकसित हो जाती है और कोई कम या सामान्य। ये सभी नौ तरह की बुद्धि एक दूसरे के साथ अंतःक्रिया करते है फिर भी उनका अपना स्वतन्त्र क्षेत्र है। इसके आधार पर यह समझा जा सकता है कि, क्यों किसी एक क्षेत्र में तो कोई व्यक्ति बहुत तेज हो जाता है पर किसी अन्य क्षेत्र में वह सामान्य रहता है या पिछड़ जाता है। बहु–बुद्धि से सम्बन्धित विचारों की आलोचना भी कई

मनोवैज्ञानिकों द्वारा की गई है पर यह हमें बच्चों के सर्वांगीण विकास के लिए व्यापक क्षेत्र प्रस्तुत करता है तथा आज की शिक्षा पद्धति में सतत एवं व्यापक मूल्यांकन के स्वरूप को समझने में विशेष मदद करता है।

वीडियो देखने के लिए कृपया नीचे दिए गए लिंक पर क्लिक करें या दिए गए क्यूआर कोड को स्कैन करें

https://www.youtube.com/watch?v=QmIxAvKi1Eg

गतिविधि

- आप अपनी कक्षा के 2 सहपाठियों का अवलोकन कर पता लगायें कि गार्डनर के सिद्धांत के अनुसार कौन–कौन से प्रकार की बुद्धि उनमें प्रमुख रूप से विद्यमान हैं। आप उनकी सूची बनाएं।
- आपके समुदाय में बुद्धि को लेकर किस–किस प्रकार की कहावते हैं, उनका संग्रह करें।
- बुद्धि को लेकर पंचतंत्र के साहित्य में कई कहानियां दी गई हैं, उनमें से कुछ चयनित कहानियों में बुद्धि की अवधारणा को किस प्रकार प्रस्तुत किया गया है, इसका विश्लेषण करें तथा अध्ययन केन्द्र पर सबसे साझा करें।

हमने इकाई एक में विकास को प्रभावित करने वाले कारकों पर चर्चा की है। वे कारक संज्ञानात्मक विकास को भी कई हद तक प्रभावित करते हैं। बच्चों को परिवार, विद्यालय या फिर समाज के माध्यम से संज्ञानात्मक विकास के कई अवसर मिलते हैं और कई बार इन कारकों के द्वारा उनके संज्ञानात्मक विकास को अवरूद्ध भी कर दिया जाता है। यह एक गम्भीर प्रश्न है कि आखिर बच्चों के सकारात्मक संज्ञानात्मक विकास के लिए क्या किया जाए। मीडिया के रोल को इसमें शक की नजर से देखा जाता है क्योंकि ऐसा प्रतीत होता है कि मोबाईल, टीवी, लैपटाप, कम्प्यूटर, इंटरनेट, कामिक्स, विडियो गेम्स, आदि के माध्यम से बच्चों का एक साख तरह का संज्ञानात्मक विकास हो रहा है, जिसमें उसके बाकि विकास को सकारात्मक बल नहीं मिलता है। इस मत पर कई विवाद भी हैं, जिसके बारे में हम सब को चिंतन करना होगा और ऐसे अवसरों को सृजित करना होगा जिससे बच्चों में संज्ञानात्मक विकास की सही दिशा हो।

3.6 समेकन

इस इकाई में हमने संज्ञानात्मक विकास एवं बुद्धि की अवधारणा के बारे में जाना। पियाजे की अवधारणा के अंतर्गत आत्मसातीकरण और समायोजन की प्रक्रिया के साथ–साथ हमने स्कीमा पर भी विचार किया। पियाजे ने अपने सिद्धांत में जो चार अवस्थाएं बतायी हैं, उसके विशेषताओं के साथ–साथ शैक्षिक निहितार्थ के बारे में हमने जाना। पियाजे द्वारा दिए गए संज्ञानात्मक सिद्धांत इस लिए महत्वपूर्ण है क्योंकि यह बच्चे, शिक्षक, अभिभावक, समाज, शिक्षण–अधिगम, पाठ्यक्रम, कक्षा और विद्यालय को समझने में व उनके आवश्यक बदलावों के आधार को समझने में सहायी है। साथ ही साथ हमने समझा कि बुद्धि संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं के विकास का ही एक रूप है। यह सीखने, अमूर्त चिन्तन करने तथा नवीन स्थितिओं से समायोजन करने की योग्यता है। विशेष तौर पर, हमने गार्डनर के बहुबुद्धि सिद्धांत का अध्ययन किया। इसके आधार पर, हम समकालीन संदर्भ में शिक्षा के स्वरूप को समझ सकते हैं।

इकाई की विस्तृत समझ के लिए निम्नलिखित ई–संसाधनों का भी उपयोग जरूर करें:

- इकाई के विषयवस्तु पर निर्मित आई.सी.टी. /ऑडियो–विजुअल/एनिमेशन सामग्री।
- प्रारम्भिक स्तर की पाठ्यपुस्तकों पर आधारित डिजिटल सामग्री, जो इस इकाई से सम्बंधित हों।
- इकाई के विषयवस्तु से सम्बंधित फिल्म, डॉक्युमेंटरी, प्रेजेन्टेशन, वेब–रिसोर्स, ओपेन रिसोर्स, आदि।

3.7 प्रदत्त कार्य

1. संवेदी–क्रियात्मक अवस्था के विशेष लक्षण बताइए।
2. संवेदी–क्रियात्मक अवस्था के दो माह के बच्चों तथा दो वर्ष के बच्चों में क्या विशेष अन्तर पाए जा सकते हैं?
3. बच्चों में ढाई तीन वर्ष कि आयु से ही विचारने, सोचने और तर्क करने की शक्ति विकसित होनी प्रारंभ हो जाती है। परन्तु इस आयु में बच्चे कि विचारशक्ति अधिक सूक्ष्म नहीं होती है। क्या आप इस कथन से सहमत हैं। उदहारण द्वारा समझाएं।
4. पियाजे के सिद्धांत पर आधारित एक 'सीखने की योजना' बनाएं तथा उसका क्रियान्वयन करें।
5. पियाजे के सिद्धांत के शैक्षिक निहितार्थों का विश्लेषण करें।
6. बिने के बुद्धि–परीक्षण की क्या सीमाएं थी ? उदाहरणों द्वारा स्पष्ट कीजिए।
7. गार्डनर का बहुबुद्धि सिद्धांत की व्याख्या को आप किस प्रकार से देखते हैं? क्या आप उससे सहमत हैं? क्यों या क्यों नहीं।
8. क्या बुद्धि का मापन किया जा सकता है? अपने जवाब के पक्ष में तर्क दें।
9. पियाजे और गार्डनर के सिद्धांतों पर बनी कुछ आडियो–विजुअल क्लिपींग को यूट्यूब पर देखें और उनका विश्लेषण करें।

इकाई **4**

बच्चों के विकास एवं सीखने में समाज की भूमिका

4.1 परिचय

4.2 उद्देश्य

4.3 पूर्व अनुभव

4.4 सामाजिक अधिगम सिद्धांत : अल्बर्ट बैण्डुरा

- 4.4.1 अवलोकन/प्रेक्षण से सीखना
- 4.4.2 समाजीकरण द्वारा सीखना
- 4.4.3 शैक्षिक निहितार्थ एवं समालोचना

4.5 सामाजिक–संस्कृतिक सिद्धान्त (Socio-cultural theory) : लेव वायगोत्सकी

- 4.5.1 सामाजिक सांस्कृति सिद्धांत की प्रमुख मान्यताएँ
- 4.5.2 सामाजिक–सांस्कृतिक सिद्धान्त के शैक्षिक निहितार्थ एवं समालोचना

4.6 समेकन

4.7 प्रदत्त काय

4.1 परिचय

शिक्षा और इससे सम्बंधित सारे तंत्र समाज की की उपज हैं। हर समाज की अपनी मान्यतायें, अपेक्षायें व व्यवस्था होती है, जिनका प्रभाव बच्चों पर पड़ना लाज़मी है। समाज बच्चों के सीखने में अहम भूमिका निभाता है। समाज में रहकर बच्चे सामाजिक जीवन की आवश्यकताओं की दृष्टि से बहुत कुछ सीखते हैं जैसे– हाव–भाव, रहन सहन, कार्य करने के तरीके, भाषा, रीति–रिवाज, आदि। घर–परिवार के सदस्यों के साथ रहते हुए, खेलते हुए, विभिन्न प्रकार की क्रिया करते हुए वे अपने समाज और संस्कृति के मूल्य, नियम, मान्यताएँ, भूमिकाएँ, सोचने–विचारने तथा व्यवहार करने के तौर–तरीके भी सीखते हैं। एक शिक्षक के लिए इन्हें समझना इसलिए जरूरी है क्योंकि बच्चों के सीखने–सिखाने के दृष्टिकोण से इनका विशेष महत्त्व है। सामाजिक–सांस्कृतिक विविधता तथा समस्याओं को कक्षायी विमर्श में किस प्रकार स्थान दें, इसके लिये भी एक शिक्षक को तैयार रहना चाहिए। प्रस्तुत इकाई में बच्चों के सीखने में समाज की भूमिका से सम्बंधित कुछ महत्वपूर्ण सिद्धांतों की चर्चा की गई है।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई के माध्यम से हम:

1. बच्चों के सामाजिक विकास की अवधारणात्मक समझ विकसित सकेंगे।
2. बच्चों के सीखने में समाज की क्या भूमिका है, इसका विश्लेषण करेंगे।
3. सीखने से सम्बंधित 'सामाजिक सिद्धांतों से अवगत होंगे तथा उनके शैक्षिक निहितार्थों को समझेंगे।

4.3 पूर्व अनुभव

हम सब बहुत कुछ अपने परिवेश के अनुभव से सीखते हैं। जैसे– हाव–भाव, रहन सहन, कार्य करने के तरीके, भाषा, रीति–रिवाज, आदि। घर–परिवार के सदस्यों के साथ रहते हुए, खेलते हुए, विभिन्न प्रकार की क्रिया करते हुए वे अपने समाज और संस्कृति के मूल्य, नियम, मान्यताएँ, भूमिकाएँ, सोचने–विचारने तथा व्यवहार करने के तौर–तरीके भी सीखते हैं। कई बच्चे तो परिवार का परम्परागत कार्य और आजीविका संचालन के हुनर भी सीखते हैं। बच्चे जन्म से ही उन कार्यों को देखते, परखते और प्रारम्भ में छोटे–छोटे कार्य के अनुकरण तथा बड़ों के मार्गदर्शन से उसी कार्य में दक्षता हासिल कर लेते हैं। इन अनुभवों का प्रयोग हम इस इकाई में दिए गए दो प्रमुख सिद्धांतों को समझने में करेंगे।

4.4 सामाजिक अधिगम सिद्धांतः अल्बर्ट बैण्डुरा

सत्तर के दशक में अल्बर्ट बैण्डुरा ने यह मन्तव्य प्रस्तुत किया कि सामाजिक परिवेश में हम जिस तरह से सीखते हैं उसकी व्यापक व्याख्या कर पाने में व्यवहारवादी दृष्टिकोण सक्षम नहीं हैं। इनके अनुसार, हम सामाजिक परिवेश में अनुकरण करके तो बहुत कुछ सीखते हैं, लेकिन इस अनुकरण करने में सोचने की प्रक्रियाएँ (संज्ञानात्मक प्रक्रियाएँ) भी चलती रहती हैं। बैण्डुरा ने इसका गहन अध्ययन किया कि हमारे व्यवहार पर तरह–तरह के मॉडल कितना गहरा असर छोड़ते हैं। अस्सी के दशक में वह इस बात पर और ज्यादा ध्यान देने लगे कि सीखना हमारी क्षमताओं एवं विश्वासों से किस तरह प्रभावित होता है। उनका मानना है कि ज्ञान (सीखना) तथा उसके आधार पर किये जानेवाले कार्य के अवलोकित भाग (व्यवहार) अलग–अलग चीजें हैं। जितना हम

प्रदर्शित करते हैं उससे कहीं अधिक हम जानते होते हैं। बाद के वर्षों में बैण्डुरा ने सीखने के संज्ञानात्मक पहलुओं (विश्वास, आत्म–सम्प्रत्ययीकरण तथा अपेक्षाओं) पर ध्यान केन्द्रित किया तथा सामाजिक संज्ञानात्मक सिद्धांत को प्रतिपादित किया।

बैण्डुरा अपने सिद्धांत में व्यक्ति के अपने प्रेक्षण और समाज द्वारा प्रस्तुत की गयी परिस्थितियों, दोनों ही से सीखने की बात करते हैं। उनका संक्षिप्त उल्लेख आगे किया जा रहा है।

4.4.1 अवलोकन/प्रेक्षण से सीखना

कोई जीव किसी निश्चित किस्म की प्रतिक्रिया करता है जिसके कारण धीरे–धीरे उन क्रियाओं के द्वारा होने वाले परिणामों का उस पर असर होने लगता है। परंतु बैण्डुरा (1962) ने कहा कि सामाजिक परिस्थितियों में हम अक्सर औरों के व्यवहार को केवल देखकर ही बहुत तेजी से सीख लेते हैं। उदाहरण के लिए, जब बच्चे गाना सीखते हैं या नृत्य सीखते हैं तो अक्सर वे नए व्यवहार की बहुत लंबी श्रृंखलाओं को तुरन्त मंचित कर देते हैं। बैण्डुरा का मानना था कि बच्चों की याद करने, सुनने और अवलोकित व्यवहारों की मदद से सामान्य नियम निकाल लेने की क्षमता उनके सीखने को प्रभावित करती है।

प्रेक्षण हमें नए व्यवहार के संभावित परिणाम भी सिखाता है। जब हम कोई नई क्रिया करते हैं तभी हमें पता चलता है कि उसका परिणाम क्या होगा।

बैण्डुरा ने इस प्रक्रिया को स्थानापन्न पुनर्बलन ;टपबंतपवने त्मपदवितबमउमदजद्ध का नाम दिया है। स्थानापन्न पुनर्बलन एक संज्ञानात्मक प्रक्रिया है। हम अपनी तरफ से कोई प्रत्यक्ष क्रिया किये बिना स्वयं अपने व्यवहार के आधार पर परिणामों के बारे में अपेक्षाएँ निर्मित कर लेते हैं।

हम बहुत तरह के मॉड्लिंग से सीखते हैं न केवल प्रत्यक्ष मॉड्ल्स से बल्कि प्रतीकात्मक मॉड्ल्स से भी, जैसे– टेलीविजन पर या किताबों में दिखाई देने वाले मॉडल्स। फिल्म, टीवी सीरियल्स, कार्टून कैरेक्टर्स, कॉमिक्स, आदि से सम्बंधित विभिन्न लोकप्रिय चरित्रों या बच्चों के पसंदीदा चरित्रों के हाव–भाव का अनुकरण बच्चे ही नहीं बल्कि बड़े भी करते हैं। यह भी सीखने का एक आम तरीका है।

गतिविधि

हम सभी किसी न किसी मॉडल/चरित्र/कार्य से प्रभावित रहते हैं। कई बच्चे अपने विद्यालय के किसी अध्यापक या अध्यापिका की तरह बनना चाहते हैं तो कई अपने परिवार या समुदाय के किसी व्यक्ति के जैसा। ऐसी इच्छा करने के साथ–साथ वे कुछ ऐसा सीखना और व्यवहार करना भी शुरू कर देते हैं जो उनके मॉडल से मेल खाए। आप अपने समुदाय के कुछ बच्चों से बात करें और पता लगाएं उनका मॉडल कौन है और क्यों?

प्रेक्षण आधारित सीखने की उपक्रियाएं :

1. **ध्यान देना (Attention)** : सबसे पहली बात यह है कि हम किसी मॉडल की तब तक अनुकरण नहीं कर सकते जब तक उस मॉडल पर ध्यान नहीं देंगे। मॉडल हमारा ध्यान इसलिए अपनी ओर आकर्षित करते हैं क्योंकि वे विशिष्ट होते है और हम उनके किसी विशिष्ट गुण व व्यवहार से प्रभावित होते हैं। किसी की ओर हमारा ध्यान हमारी मनोवैज्ञानिक विशिष्टताओं से भी तय होता है, जैसे–बच्चे, रूचियां तथा

अपने माता–पिता अथवा अन्य व्यक्तियों के बोलने/चलने के तरीके, व्यवहार आदि से प्रभावित होकर उनको अपने व्यवहार में ढाल लेते हैं।

2. **याद रखना (Retention)** : हम ज्यादातर मॉड्ल्स की अनुकरण उनको देखने के कुछ समय बाद ही करते हैं इसलिए हमारे पास उनकी क्रियाओं को प्रतीकात्मक ढंग से याद रखने का कोई तरीका भी जरूर होना चाहिए। बैण्डुरा के अनुसार प्रतीकात्मक प्रक्रिया में हम एक साथ घटने वाले उद्धीपकों (Stimuli) के बीच सहसम्बन्ध बना लेते हैं जिस कारण उन्हे याद रखना आसान हो जाता है। उदाहरण के लिए, मोबाईल में रिंगटोन कैसे सेट करना है, या फिर उसका प्रोफाईल पिक्चर कैसे बदलना है, विडियो कैसे चलाना है, आदि कार्यों को जब हमारे बच्चे हमें करते हुए देखते हैं तो वे उस कार्य के हर चरण के बीच एक सहसम्बंध बना लेते हैं और वैसा करना बहुत जल्दी सीख जाते हैं। साथ में, वे सहसम्बंध बनाते हुए मोबाईल के वैसे फीचर्स का इस्तेमाल भी सीख जाते हैं जो शायद हमे भी नहीं आते हैं।

बैण्डुरा का यह भी मानना है कि हम घटनाओं को प्रायः शब्दों की मदद से याद रखते हैं। उदाहरण के लिए आपको वैसे जगह पर जाना है जहां पहले नहीं गए हैं। आप किसी से वहां जाने का रास्ता पूछते हैं। वह व्यक्ति आपको कुछ दिशानिर्देश देता है कि कौन से सड़क से जाना है, कहां तक जाना है, कब मुड़ना है किस दिशा में मुड़ना है, आदि। जब आप अकेले आगे बढ़ते है तो उसके द्वारा कहे गये शब्दों की मदद से आप अपने गन्तव्य स्थान तक पहुंच जाते हैं।

इस संदर्भ में यह भी निकल कर आया है कि पांच साल या उससे कम उम्र के बच्चे शब्दों के स्तर पर सोचने के आदी नहीं होते और संभवतः उन्हें आँखों से दिखाई देने वाली चीजों पर बहुत ज्यादा आश्रित रहना पड़ता है। इससे उनकी अनुकरण करने का सामर्थ्य सीमित हो जाता है। आयु वृद्धि के साथ बच्चे की भाषायी क्षमता विकसित होती जाती है जिससे उनमें प्रतीकात्मक सोच एवं तदनुरूप व्यवहार करने की क्षमता बढ़ जाती है।

3. **कियात्मक पुनरूत्पादन प्रक्रियाएँ (Motor Reproduction Processes)** : किसी व्यवहार को एकदम जस का तस दोहराने के लिए जरूरी है कि हमारे पास आवश्यक क्रियात्मक कौशल हों।

उदाहरण के लिए, एक कुम्हार के 10 वर्ष की बेटी अपने पिता को चक्का चलाते देखे लेकिन संभव है कि वह उनकी अच्छी तरह अनुकरण न कर पाए क्योंकि उसके पास वैसी शारीरिक ताकत और दक्षता नहीं है। प्रेक्षण के आधार पर वह कई चीज सीख लेती है जैसे खेत से कौनसी मिट्टी लाना, उसे कैसे बीनना, तैयार करना लेकिन चक्का नहीं चला पाती क्योंकि कोई नया शारीरिक सामर्थ्य केवल शरीर के विकास और अभ्यास से ही आती हैं।

4. **पुनर्बलन एवं अभिप्रेरणा (Reinforcement and Motivation)** : बैण्डुरा नया सीखने तथा प्रदर्शन के बीच फर्क मानते हैं। हम कोई मॉडल को देख कर उससे नया ज्ञान अर्जित कर सकते हैं लेकिन ये जरूरी नहीं है कि हम उससे सम्बन्धित प्रतिक्रियाएँ भी प्रदर्शित करें। जैसे कि आस–पड़ौस से कोई बच्चा कुछ अपशब्द सुने और उन्हे सीख भी ले पर यह हो सकता है कि वह स्वयं उन्हे नहीं दोहराए। हम क्या प्रदर्शित करते हैं वह काफी हद तक हमें मिलनेवाले पुनर्बलन और अभिप्रेरणा पर निर्भर होता है। अगर हमें किसी इनाम या फायदे की उम्मीद हो तो हम सचमुच दूसरे व्यक्ति की अनुकरण करेंगे। इस प्रसंग में आंशिक रूप से प्रत्यक्ष पुनर्बलन (direct reinforcement) का पिछला अनुभव अपना काम कर रहा होता है। लेकिन अगर वह अपशब्द बोलता है और बदले में उसे डांट पड़ती है तो संभवतः वह अपने पड़ोसी की अनुकरण करने में हिचकिचाने लगेगा। कुल मिलाकर, हमारा प्रदर्शन आंशिक रूप से स्वपुनर्बलन (Self Reinforcement) अर्थात अपने व्यवहार के बारे में हमारे अपने मूल्यांकनों से संचालित होता है।

इस तरह, किसी मॉडल की सफलतापूर्वक अनुकरण करने के लिए जरूरी है कि हम–

- मॉडल पर ध्यान दें।
- हमने जो कुछ देखा है उसे प्रतीकात्मक रूप से मस्तिष्क में धारण करके रखने का हमारे पास कोई तरीका हो।
- हमारे पास उस व्यवहार को दोहराने के लिए आवश्यक क्रियात्मक कौशल हो।
- हमारा असल प्रदर्शन पुनर्बलन की संभावना से संचालित होता है जिसमें से बहुत सारे पुनर्बलन स्थानापन्न किस्म के होते हैं। अगर ये सारी शर्तें पूरी हो जाती हैं तो संभवतः हम यह समझ जाएंगे कि किसी मॉडल की कैसे अनुकरण करना है। लेकिन हो सकता है कि फिर भी हम ऐसा न कर पाएँ।

गतिविधि

प्रेक्षण द्वारा सीखने से सम्बन्धित अपने अथवा देखे गए एक ऐसे उदाहरण को विस्तार से बताइए जिसमें आपको प्रेक्षण के चारों चरण स्पष्ट दिखाई देते हों। इन्हें क्रमानुसार लिपिबद्ध कीजिए।

4.4.2 समाजीकरण द्वारा सीखना

बैण्डुरा ने अपने सिद्धांत में समाजीकरण की प्रक्रिया को सीखने के लिए महत्वपूर्ण माना है। समाजीकरण वह प्रक्रिया है जिसके माध्यम से विभिन्न समाज अपने सदस्यों को सामाजिक रूप से स्वीकार्य व्यवहार करने के लिए प्रेरित करते हैं। जैसे– किस तरह से सहयोग, आदान–प्रदान, विरोध, गुस्सा, प्यार, सहानुभुति, आदि को प्रकट करना है। बैण्डुरा ने इसका अध्ययन एक प्रयोग करके किया। इस अध्ययन में चार साल के बच्चों को अलग–अलग एक फिल्म दिखाई गई जिसमें एक वयस्क पुरूष थोड़ा नए तरह का

आक्रामक व्यवहार कर रहा था। मॉडल ने अपने बगल में एक बोबो डॉल (रबर की फूली हुई एक बड़ी–सी डॉल) लिटाई, उस पर बैठ गया और उसको घूंसे मारने लगा। वह ''नाक पर मारो'' जैसी आवाजें निकाल रहा था। प्रत्येक बच्चे को इनमें से तीन अलग–अलग स्थितियों में रखा गया जिसका मतलब यह था कि प्रत्येक बच्चे को वही फिल्म देखने को मिली लेकिन तीनों की फिल्म का अंत अलग–अलग परिस्थितियों को दिखाकर किया गया।

परिस्थिति–1 : आक्रामकता – **पुरस्कृत** परिस्थिति में मॉडल की सराहना की जा रही थी और उसे फिल्म के आखिर में तोहफे मिलते थे। एक अन्य वयस्क ने उसे ''जबर्दस्त चैम्पियन'' कहकर उसकी सराहना की और उसे चॉकलेट, सॉफ्ट ड्रिंक और दूसरी ऐसी ही चीजें दी।

परिस्थिति–2 : आक्रामकता – **दंडित** परिस्थिति में मॉडल को ''बड़ा धौंसबाज'' कहकर उसको जोर से घूंसा मारा गया, और फिल्म के आखिर में उसे बाहर ढकेल दिया गया।

परिस्थिति–3 : परिणाम – **मुक्त परिस्थिति** में मॉडल को अपने गुस्सैल व्यवहार के बदले में न तो कोई तोहफा मिला और न ही किसी ने उसको सजा दी।

फिल्म के फौरन बाद तीनों बच्चों को एक कमरे में ले जाया गया जहां बोबो डॉल तथा दूसरे खिलौने थे। शोधकर्ता एक आईने में से बच्चों को देख रहे थे ताकि ये पता लगे कि कौन सा बच्चा कब और कितनी बार आक्रामक मॉडल की अनुकरण करता है। परिणामों से पता चला कि जिन बच्चों ने मॉडल को दंडित होते हुए देखा था वे उस मॉडल के व्यवहार की बहुत कम अनुकरण कर रहे थे। इस तरह स्थानापन्न दंड ने आक्रामक प्रतिक्रियाओं की अनुकरण में कमी ला दी थी। आक्रामकता–पुरस्कृत तथा परिणाम–मुक्त फिल्म देखने वाले बच्चों के व्यवहार में कोई फर्क नहीं था। गुस्से जैसे जो व्यवहार हमेशा निषिद्ध मान जाते हैं, उनके सम्बन्ध में प्रायः इसी तरह के नतीजे दिखाई देते हैं। ''इस बार कुछ भी बुरा नहीं होगा'' यह देखने से भी बच्चों को उसी तरह अनुकरण करने की प्रेरणा मिलती है जैसे स्थानापन्न पुरस्कार की स्थिति में मिलती है।

इस प्रयोग का दूसरा और उतना ही महत्वपूर्ण एक और चरण भी था। कुछ देर बाद एक शोधकर्ता कमरे में आया और उसने हर बच्चे को बताया कि अगर वह एक बार फिर अतिरिक्त प्रतिक्रिया दे तो बच्चों को जूस और स्टिकर मिलेगा। इस उत्प्रेरक ने तीनों समूहों के बीच फर्क पूरी तरह खत्म कर दिया। अब सारे बच्चे मॉडल की पूरी–पूरी अनुकरण करने लगे – जिन्होंने मॉडल को दंडित होते देखा था वे भी। स्थानापन्न दंड ने नयी प्रतिक्रिया के प्रदर्शन को केवल अवरूद्ध कर दिया था लेकिन उसके अर्जित होने को नहीं रोका था। आक्रामकता–दंडित परिस्थिति वाली फिल्म देखने वाले बच्चों ने नई प्रतिक्रिया सीख तो ली थी लेकिन जब तक उन्हें नए उत्प्रेरक की उम्मीद दिखाई नहीं दी तब तक उन्हें ऐसे व्यवहार को दोहराने की जरूरत महसूस नहीं हुई।

गुस्से की तरह अन्य व्यवहार जैसे जेंडर आधारित भूमिकाएँ, परोपकारी व्यवहार व आचरण और उपदेश पर कई सामाजीकरण अध्ययन किए गए हैं, जिसमें मॉडल की भूमिका को सीखने के लिए महत्वपूर्ण माना गया है।

विभिन्न समाज लड़कों को ''पुरूषोचित'' और लड़कियों को ''स्त्रियोचित'' गुण विकसित करने के लिए प्रोत्साहित करते हैं। इसी तरह अगर मॉडल परोपकारी व्यवहार जैसे– कि एक दूसरे की मदद करना, संकट में फंसे लोगों की मदद करना आदि व्यवहार प्रदर्शित करता है तो बच्चे इस तरह के व्यवहार को अपना लेते हैं। इन शोधों में यह भी देखा गया कि यदि मॉडल बच्चों को कुछ करने का आदेश या उपदेश दे तो बच्चों पर उसका असर उतना नहीं पड़ता जितना की मॉडल द्वारा उस काम को अपने व्यवहार में प्रदर्शित करके बताने से पड़ता है। अगर कोई वयस्क सिर्फ ये कहते हैं कि ''मिल–बांट कर खाना अच्छी बात है'' तो बच्चे पर ज्यादा असर नहीं पड़ेगा। लेकिन हां, अगर वयस्क व्यक्ति स्वयं ऐसा करे तो बच्चे पर काफी असर पड़ेगा। जैसे– अगर वयस्क मिल–बांट कर चीजों को इस्तेमाल करते हैं तो बच्चों का भी ऐसा करने की सम्भावना ज्यादा होगी।

बहुत सारे दूसरे प्रयोगों में भी देखा गया है कि मॉडल न केवल बच्चों की आदान–प्रदान की भावना को प्रभावित करते हैं बल्कि संकट में फंसे लोगों के प्रति मदद की भावना को भी प्रभावित करते हैं। मॉड्ल्स के व्यवहार से उनकी मिलकर काम करने, दूसरों की भावनाओं की परवाह करने की प्रवृत्ति को बल मिलता है ।

बैण्डुरा का मानना था कि जैसे–जैसे लोगों का समाजीकरण होता है, वे बाहरी पुरस्कार और दंड पर कम आश्रित होते जाते हैं और व्यवहार को अधिकाधिक स्वयं नियंत्रित करने लगते हैं। अर्थात वे अपने भीतरी मानक तय कर लेते हैं और उन्हीं कसौटियों के आधार पर स्वयं को पुरस्कार या सजा देते हैं। इसे **स्व नियमन (Self regulation)** कहा जाता है। उदाहरण के लिए, अगर कोई व्यक्ति नैतिक मानकों की अवहेलना करता है चाहे उसके बारे में कोई जानता भी न हो तो भी संभव है कि वह स्वयं अपनी आलोचना करने लगे। वह अपने आप को सजा देना चाहता है क्योंकि उसका व्यवहार उसकी अपनी कसौटियों के विपरीत हुआ है। आम जिन्दगी में स्थिति बहुत जटिल होती है क्योंकि बच्चे तरह तरह के मॉडलों (जैसे माता–पिता, संगी–साथी, शिक्षक, टी.वी. के किरदार) के संपर्क में आते हैं जिनके मानक भिन्न–भिन्न होते हैं– किसी के साधारण किसी के उच्च। यह देखा गया है कि बच्चे अपने संगी–साथियों के आत्ममूल्यांकनकारी मानकों को ज़्यादा अपनाते हैं क्योकि बच्चे उन लक्ष्यों को ज़्यादा आसानी से हासिल कर सकते हैं।

जब हम स्वयं अपने व्यवहार का नियमन करते हैं तो लगातार अपने ऊपर नज़र रखते हैं एवं आत्मप्रेक्षण करते हैं। हम अपने रोजमर्रा के प्रदर्शन को अपने द्वारा तय किए गए मानकों और लक्ष्यों के धरातल पर आंकते रहते हैं। दूसरे मौकों पर हम अपनी सामान्य क्षमताओं पर ध्यान देते हैं, और इस तरह के नतीजों पर पहुँचते हैं कि ''मैं अंग्रेजी में अच्छा हूँ'' या मैं खराब गायिका हूँ।'' बैण्डुरा ने इस तरह के सामान्य फैसलों को **स्वकुशलता (Self efficacy) आकलन** कहा है। जब हमें यह विश्वास होता है कि हम किसी काम में अच्छे है तो हम उस पर उत्साह से काम करते हैं और बीच–बीच में आने वाली विफलताओं के बावजूद लगन से जुटे रहते हैं। इसके विपरीत, जब हमें अपनी सामर्थ्य पर संदेह रहता है तो हम कम ऊर्जा के साथ काम करते हैं और मुश्किलें आने पर काम को बीच में ही छोड़ देने की आशंका भी बहुत ज्यादा रहती है।

यह भी हो सकता है कि हम अपनी सामर्थ्य का बहुत बढ़ा–चढ़ा कर आकलन करने लगें। यह बात उस समय विशेष कर सही पाई गई है जब शारीरिक चोट की आशंका रहती है। अगर हम किसी तीखी ढलान पर नीचे की तरफ साइकिल चलाने की अपनी क्षमता को बढ़ा–चढ़ा कर आंकते हैं तो हमें गंभीर चोट लग सकती है। लेकिन आमतौर पर बैण्डुरा का मानना हैं कि सफलता के प्रति अपने विश्वास और अपनी क्षमताओं को बढ़ा–चढ़ाकर आंकना अच्छी बात है। जिंदगी में कई कठिनाइयां हैं– निराशाएं, विफलताएं, रूकावटें, भेदभाव आदि। ऐसे में स्वकुशलता के बारे में आशावादी दृष्टिकोण लाभप्रद रहता है क्योंकि लगातार चेष्टा करने वाले अपने आप में इतना गहरा विश्वास रखते हैं कि वे असामान्य प्रयास कर पाते हैं और अपने लक्ष्य को हासिल करने के लिए असंख्य विफलताओं को भी लगातार झेलते जाते हैं लेकिन रूकते नहीं।

वीडियो देखने के लिए कृपया नीचे दिए गए लिंक पर क्लिक करें या दिए गए क्यूआर कोड को स्कैन करें

https://www.youtube.com/watch?v=rGroRoOByEg

4.4.3 शैक्षिक निहितार्थ एवं समालोचना

बैण्डुरा के शोध से हमने बच्चों के लालन–पालन व शिक्षण में मॉड्ल्स के प्रभाव के बारे में बहुत कुछ समझा है। अधिकांश माता–पिता और शिक्षक

मॉडल का बच्चों को सीखने में उपयोग तो करते हैं परंतु हमें शायद यह अंदाजा नहीं कि मॉडलिंग से बच्चे कितना कुछ सीख लेते हैं।

बैण्डुरा के अनुसार मॉडलिंग के कई रूप होते हैं। इनमें सबसे चिर–परिचित प्रकार व्यवहार मॉडलिंग ही है, अर्थात हम किसी व्यवहार को प्रत्यक्ष करके दिखाते हैं। मॉडलिंग मौखिक रूप से भी की जा सकती है। उदाहरण के लिए जब हम निर्देश या आदेश देते हैं तो यह मौखिक मॉडलिंग होती है। सामाजिक शोधकर्ताओं ने विभिन्न प्रकार की मॉडलिंग के असर का मूल्यांकन किया है। अभिभावकों और शिक्षकों को उनके परिणामों पर ध्यान देना चाहिए।

टी.वी. व फिल्मों में दर्शाए गए चरित्र बच्चों की जिन्दगी को गहराई से प्रभावित करते हैं विशेषकर उनको, जो घंटों टी.वी. के सामने बैठे रहते हैं। चिंता की बात यह है कि कई शोध इस बात की भी पुष्टि करते हैं कि टी.वी. पर दिखाई जा रही हिंसा बच्चों के दैनिक जीवन में भी आक्रामकता को बढ़ाती है। इसी तरह फिल्म और टी.वी. के सीरियल महिलाओं, गरीबों, विशिष्ट व्यक्तियों को खास तरह की भूमिकाओं में दिखाते हैं।

मॉडलिंग से व्यवहार पर बहुत गहरा असर पड़ सकता है इसलिए इसमें एक उपचारक साधन के रूप में गहरी संभावनाएं दिखाई देती है। बैण्डुरा एवं अन्य ने ऐसे कई अध्ययन किए हैं जो इस बात को और व्यवस्थित ढंग से दिखाते हैं कि किस तरह मॉडलिंग भय दूर करने में कारगर साधन हो सकती है। एक प्रयोग में चार साल के ऐसे बच्चों को लिया गया जो कुत्तों से डरते थे। प्रयोग में उन्हें एक बच्चे को आराम से कुत्ते के साथ खेलते हुए दिखाया गया। इस प्रेक्षण के बाद कुत्तों के प्रति इन बच्चों का भय भी कम हो गया था।

बैण्डुरा ने स्वकुशलता को कमजोर करने वाली सामाजिक परिस्थितियों पर भी ध्यान दिया है। उनका कहना है कि रैकिंग और प्रतिस्पर्धी ग्रेडिंग जैसी प्रचलित स्कूली पद्धतियां बहुत सारे बच्चों में हीन भावना उत्पन्न कर देती है।इसके विपरीत अगर बच्चों को ज्यादा सहयोगपरक ढंग से काम करने का मौका दिया जाए और वे स्वयं अपनी व्यक्तिगत प्रगति के अनुरूप अपने आप को आंक सकें (न कि दूसरे विद्यार्थियों की प्रगति की तुलना में) तो ज्यादा बेहतर नतीजे प्राप्त किए जा सकते हैं। बैण्डुरा का कहना है कि शिक्षकों के लिए यह बहुत महत्वपूर्ण बात है कि वे स्वयं भी अपनी स्वकुशलता में विश्वास करें। जब वे यह विश्वास करने लगते हैं कि उनकी

कोशिश से निश्चित रूप से असर पड़ेगा तो उनका आत्मविश्वास उनके बच्चों/विद्यार्थियों के लिए भी एक मॉडल बन जाता है।

मौटेतौर पर बैण्डुरा हमारे प्रौद्योगिकीय समाज की निर्वैयक्तिकता के बारे में चिंतित हैं। वह इस बात से परेशान हैं कि ऐसे समाज को बदलने में किसी व्यक्ति को कितनी कठिनाई से गुजरना पड़ता है। उनके अनुसार आधुनिक जगत में स्वकुशलता के स्थान पर अनिवार्य रूप से सामूहिक स्वकुशलता का बोध होना चाहिए अर्थात व्यक्ति मिलकर परिवर्तन के लिए काम करें।

बैण्डुरा के निष्कर्षों में समय के साथ काफी परिवर्तन आया है। उनके अनुसार स्किनर का सिद्धांत सीखने की व्याख्या करने में अपर्याप्त है। सीखने के लिए मॉड्ल्स का प्रेक्षण भी जरूरी होता है जो कि एक संज्ञानात्मक प्रक्रिया है। इस प्रारंभिक अनुसंधान में बैण्डुरा ने मॉडलिंग के प्रभावों की ताकत पर ध्यान केंद्रित किया था और उन्होंने तथा उनके सहयोगियों ने इस बात को दिखाने के लिए बेहतरीन प्रयोग किए हैं।

विगत वर्षों में, विशेषरूप से 1980 के दशक के मध्य से बैण्डुरा का सिद्धांत लगातार उदार और व्यापक होता चला गया है। अपने हाल के स्वकुशलता सिद्धान्तों में बैण्डुरा मॉडलिंग के प्रभावों को सफल प्रदर्शन (जिसमें व्यक्ति कठोर परिश्रम से परिणाम प्राप्त करता है) से कम शक्तिशाली मानने लगे हैं और बैण्डुरा उस व्यापक सामाजिक संदर्भ के बारे में ज्यादा चिंतित है जिसमें स्वकुशलता का बोध विकसित होता है।

फिर भी, मॉडलिंग की अवधारणा उनके पूरे चिंतन और शोधों का हिस्सा है। मॉडलिंग और सामाजिक परिवेश के महत्व ने विकासवादी मान्यताओं को भारी चुनौती दी है। अतः उनके शोधों पर विकासवादियों द्वारा दी गई प्रतिक्रियाओं को जान लेना उपयुक्त रहेगा।

विकासवादी ये तो मानते हैं कि परिवेश या वातावरण से व्यवहार पर प्रभाव पड़ते हैं और अक्सर वे इन प्रभावों को बैण्डुरा की तरह ही महत्व भी देते हैं बच्चे की भीतरी परिपक्वता और दुनिया को जानने की स्वतः – स्फूर्त चाह को बैण्डुरा अधिक महत्व देते हैं।

पियाजेवादियों का मानना है कि बच्चे अपेक्षाकृत नई घटनाओं में अपनी स्वतःस्फूर्त रूचि के कारण सीखते हैं। बैण्डुरा इस तर्क को निराधार मानते हैं। उनका कहना है कि बच्चे वास्तव में पुनर्बलन प्राप्त करने के लिए सीखते हैं जिसे वे अंततः अपने व्यक्तित्व का हिस्सा बना लेते हैं।

जैसा कि पियाजे का मानना था कि बच्चों के सामने कुछ नया आता है तो वह उसे सीखने के लिए स्वयं से उत्साहित होते हैं, लेकिन बैण्डुरा का मानना था कि दैनिक प्रेक्षणों के मामले में ऐसा नहीं होता है।

विलियम क्रेन नामक मनोवैज्ञानिक का मानना है कि बैण्डुरा ने वर्तमान समाज में सीखने के सबसे प्रचलित प्रकार पर प्रकाश डाला है। हम लगातार अपने मानक तय करने और उनके आधार पर अपनी प्रगति व सामर्थ्यों को आंकने का प्रयास करते रहते हैं। लेकिन इस तरह का विस्तृत स्वमूल्यांकन हमारी सीमाओं को निर्धारित करने लगता है। हम अपने आप में ही इतना सिमट जाते हैं कि दुनिया के बारे में

बच्चों जैसे उत्साह से वंचित रह जाते हैं – हम प्रकृति, दूसरे लोगों, कला और दुनिया में रूचि लेना बंद कर देते हैं।

पियाजेवादियों का यह भी मानना है कि बैण्डुरा ने कॉग्निटिव संरचनाओं के महत्व को नजरअंदाज किया है। बैण्डुरा मानते हैं कि कॉग्निटिव सामर्थ्य इस बात की सीमा तय कर देती है कि बच्चे क्या सीख सकते हैं और किन चीजों की अनुकरण कर सकते हैं।

अन्ततः सारी सीमाओं के बावजूद बैण्डुरा ने सीखने के सिद्धांत को काफी विस्तार दिया है और हमारा परिवेश किस तरह हमारे व्यवहार को निर्धारित करता है, इस बारे में हमारी समझ में नए पहलू जोड़े हैं।

वीडियो देखने के लिए कृपया नीचे दिए गए लिंक पर क्लिक करें या दिए गए क्यूआर कोड को स्कैन करें

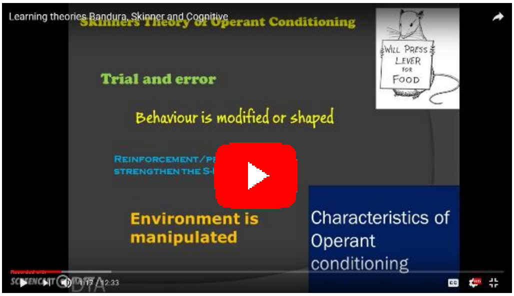

https://www.youtube.com/watch?v=Ry0awoLKS2E

गतिविधि

1. अपने परिवेश में बच्चों का अवलोकन करके 3 उदाहरण दीजिए जिसमें बच्चों ने दूसरों को देखकर अपने सामाजिक एवं क्रियात्मक कौशलों को विकसित किया हो।
2. अपने सहपाठियों के साथ साक्षात्कार द्वारा पता लगाइये कि वे किस तरीके से पढ़ते हैं और पढ़ने के किन–किन तरीकों को उन्होंने दूसरों का अनुकरण करके सीखा?उन तरीकों को चार्ट पर लिखें।

4.5 सामाजिक–संस्कृतिक सिद्धान्त (Socio-cultural theory) : लेव वायगोत्सकी

आपने पियाजे के संज्ञानात्मक सिद्धांत का अध्ययन पिछली इकाई में किया। पियाजे के लिए बच्चों का संज्ञानात्मक विकास सर्वव्यापी होता है जिसमें सांस्कृतिक संदर्भ का प्रभाव नहीं पड़ता है। इनके अनुसार, सभी बच्चे एक निर्धारित क्रम में चार अवस्थाओं से गुजरते हैं, चाहे किसी भी समाज–संस्कृति के हों। परंतु रूसी मनोवैज्ञानिक लेव वायगोत्सकी का मानना था कि संज्ञानात्मक प्रक्रिया किस तरह प्रकट होती हैं उस पर बच्चे के सांस्कृतिक संदर्भ का गहरा प्रभाव पड़ता है। वायगोत्सकी ने यह समझने का प्रयास किया कि किस तरह बच्चों का सामाजिक और सांस्कृतिक संदर्भ उनके सीखने व संज्ञान को प्रभावित करता है। उन्होनें बच्चे के संज्ञान विकास को समझने के लिये सामाजिक, ऐतिहासिक व सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को समझना जरूरी माना है। वह इस पर जोर देते हैं कि किस तरह किसी समुदाय की संस्कृति अर्थात मूल्य, मान्यताएँ, रीति–रिवाज़ और कौशल एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक स्थानान्तरित होते हैं।

4.5.1 सामाजिक सांस्कृति सिद्धांत की प्रमुख मान्यताएँ

वायगोत्सकी के अनुसार, बच्चों का विकास सामाजिक और सांस्कृतिक क्रियाओं से अलग करके नहीं समझा जा सकता । दैनिक जीवन में परिवार

में होने वाली स्वभाविक बात–चीत, खाना खाते समय, घर के काम करते हुए, समाज के कार्यक्रमों, किस्से–कहानी सुनाते हुए, आदि से बच्चे बहुत कुछ सीखते हैं। वयस्क लोगों के साथ बातचीत के माध्यम से वे यह सीख जाते हैं कि उनकी संस्कृति दुनिया को कैसे देखती है (मूल्य, प्रथाएँ, नियम)। सामाजिक सम्बन्धों में और सामाजिक सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में वह ज्ञान अन्तर्निहित होता है जो बच्चों को परिवार, समुदाय, रीति–रिवाज, त्यौहार आदि के माध्यम से दिया जाता है और यह ज्ञान उसके ज्ञानात्मक विकास में महत्वपूर्ण उपकरण होते हैं।

वायगोत्सकी का मानना है कि संस्कृति अपने बच्चों को ज़रूरी भौतिक और संज्ञानात्मक उपकरण (टूल्स) उपलब्ध कराती है जैसे कि भाषा, लिपि, गिनने की व्यवस्था, आदि। बच्चे में ज्ञानात्मक कुशलताओं का विकास शब्द, भाषा व संवाद के माध्यम से होता है। ज्ञानात्मक कुशलताओं के विकास में शब्द, भाषा व संवाद मनोवैज्ञानिक उपकरणों के रूप में कार्य करते हुए माने जा सकते है। भाषा व संवाद मानसिक क्रियाओं को सरल बनाने तथा उन्हें परिवर्तित करने का सबसे बड़े उपकरण होते हैं। अपने आसपास के लोगों की मदद से सांस्कृतिक संकेतों को जानने से सीखने की शुरुआत होती है। बाद में बच्चे अपने समुदाय की संस्कृति में जीते हुए उनमें प्रचलित संकेतों को सीखकर उनके बारे में विचार करते हैं और अपने जीवन पर लागू करते हैं। बचपन में भाषा का प्रयोग एक उपकरण के समान होता है जो बच्चे को उसकी क्रियाओं की योजना बनाने और समस्याएं हल करने में सहायता देती है। भाषा के उपकरण द्वारा बच्चे अपने विचारों को व्यवस्थित करते हैं और उन्हें दूसरों तक पहुँचाते हैं। उदाहरण के तौर पर, छोटे बच्चे शुरूआत में ऐसे शब्द बनाते हैं जो उनकी माँ ही समझ पाती हैं कोई दूसरा व्यक्ति नहीं। लेकिन धीरे–धीरे संज्ञानात्मक विकास के माध्यम से बच्चे वैसे शब्दों का प्रयोग करना शुरू कर देते हैं जो उनके समाज–संस्कृति के सभी लोग समझ सकें।

वायगोत्सकी बच्चे में दो स्तर की बौद्धिक क्रियाओं की बात करते हैं प्राथमिक स्तर की और उच्च स्तर की क्रियाएँ। प्राथमिक स्तर की क्रियाएँ करने के लिये बच्चे को सोचने की जरूरत नहीं होती, जैसे – देखना, सुनना, भूख लगना, हँसना, रोना आदि। उच्च स्तर की बौद्धिक क्रियाओं जैसे कि सोचना, याद करना, भाषा आदि में सामाजिक अंतःक्रिया आवश्यक है। सीखने में यदि बच्चों को उनसे ज़्यादा कुशल व्यक्ति की मदद मिले तो बच्चे अपनी क्षमता से अधिक चुनौतीपूर्ण काम भी कर सकते हैं।

वायगोत्सकी के सिद्धान्त के मुख्य पहलू निम्नवत् हैं :

- **भाषा तथा विचार** : वायगोत्सकी ने संज्ञानात्मक विकास में बच्चों की भाषा एवं चिन्तन को महत्वपूर्ण साधन बताया है। बच्चा भाषा का प्रयोग न केवल समाज के साथ विचारों के आदान–प्रदान करने के लिये बल्कि अपनी योजना बनाने में, अपना व्यवहार करने में भी करता है। वायगोत्सकी के अनुसार भाषा और विचार शुरू में एक दूसरे से स्वतन्त्र होते है और फिर एक दूसरे में मिल जाते है। बच्चे समाज में रह कर ही अपने विचारों को शब्द दे पाते है और उनकी भाषा का विकास होता है। बच्चे भाषा का उपयोग केवल सामाजिक संचार के लिये ही नहीं करते बल्कि इसका उपयोग वे अपने व्यवहार को नियोजित, निर्देशित व नियन्त्रित करने के लिये भी करते हैं। आपने बच्चों को खेलते हुए स्वयं से बातें करते देखा होगा। वायगोत्सकी इसे व्यक्तिगत वार्तालाप **(private speech)** कहते हैं। जो बच्चे मुक्त रूप से व्यक्तिगत वार्तालाप करते हैं वह मुश्किल कार्य करने में ज्यादा ध्यान देते हैं और अपनी सक्रिय भागीदारी से उत्तम प्रदर्शन करते हैं। आगे चल कर यही व्यक्तिगत वार्तालाप आंतरिक वार्तालाप में बदल जाता है जो हमें सोचने में मदद करता है। उदाहरण के लिए दो साल की मीना सनी हुई मिट्टी से तरह तरह के सामान बना रही थी और साथ मे उनके बारे में कुछ कुछ बोल रही थी।

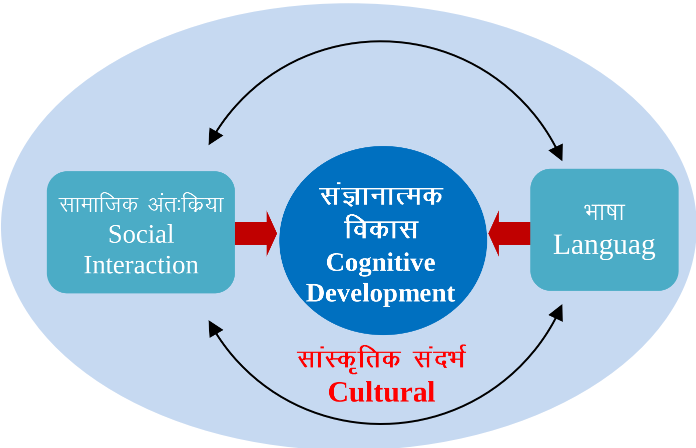

- **वास्तविक विकास का स्तर (level of actual development) :** वायगोत्सकी का सिद्धान्त यह बताता है कि प्रत्येक व्यक्ति के सीखने की संभावनाओं का एक निश्चित क्षेत्र होता है। संज्ञानात्मक विकास को अंतर्वैयक्तिक सामाजिक परिस्थितियाँ भी प्रभावित करती है जिसमें बच्चे स्वयं, बिना किसी की मदद के अपने स्तर पर सीखते है। जैसे कि चूसना, खेलना, बोलना, चलना, दौड़ना आदि। इसे वायगोत्सकी ने वास्तविक विकास के स्तर का नाम दिया। जिसमें बच्चे बिना किसी मदद के अपने आप सीखते हैं। उदाहरण–घुटनों के बल चलना, वॉकर में चलना,चीजों को उठाकर रखना,पलंग से नीचे उतरना आदि।

- **समीपस्थ विकास का क्षेत्र (Zone of Proximal development or ZPD)** – यह वह क्षेत्र है जहाँ यथार्थ में सीखना होता है। ऐसे काम जो बच्चों की क्षमता के अनुरूप में न हो तब भी किसी की मदद से वे ऐसे काम कर लेते हैं। जब बच्चे कुछ नया सीख रहे होते हैं या कोई समस्या का समाधान कर रहे होते हैं तब उन्हे यदि किसी की सहायता मिलती है तो वह उस कार्य को बेहतर तरह से कर पाते हैं। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि समीपस्थ विकास का क्षेत्र वह क्षेत्र है जिसमें बच्चे ऐसे कठिन कार्यो को अन्य वयस्कों या कुशल सहयोगियों की मदद से कर लेते हैं।

- **सहारा लगाना (Scaffolding) :** बच्चे जब कुछ नया सीख रहे होते हैं तो शुरू में उन्हे उनसे ज़्यादा हुनरमंद व्यक्ति के सहारे या मदद की ज़रूरत पड़ती है। जैसे–जैसे बच्चे वह नया काम सीख लेते हैं मदद की मात्रा को कम करते जाते हैं और अन्त में बच्चे उस काम को बिना किसी की मदद से कर पाते हैं। वायगोत्सकी ने इस सहारे को **स्कैफोल्डिंग** नाम दिया। मकान बनाते समय बनाया गया पाड़ नए बनते घर को सहारा देता है। स्केफोल्ड शब्द इसी प्रकार के सहारे को इंगित करता है। वायगोत्सकी के अुनसार वयस्कों के साथ की गई अन्तः क्रिया से बच्चों के संज्ञानात्मक विकास को मदद मिलती है। विभिन्न अन्तः क्रियाओं के दौरान वयस्क एक सहाऱा प्रदान करते हैं जिसे बच्चे नये काम या नए प्रकार के चिन्तन करते समय उपयोग कर सकते हैं।

  मान लीजिए हमने अपने विद्यार्थियों को औसत से थोड़ा ज्यादा स्तर का कठिन सवाल दिया है। वह विद्यार्थी इस प्रकार का औसत कठिनाई का सवाल कर लेता है। अपने पहले के अनुभवों से शायद वह इस सवाल को समझने के लिए कोई तरीका न खोज पाए। ऐसे में एक शिक्षक या शिक्षिका की उपस्थिति कई तरह से मददगार हो सकती है। आप कुछ शब्दों को रेखांकित कर सकते हैं या उसका ध्यान सवाल के कुछ हिस्सों की ओर खींच सकते हैं। इससे उसे सवाल के पीछे छुपा अर्थ समझने में मदद मिल सकती है या आप बच्चे से ऐसे कुछ संबंधित सवाल पूछ सकते हैं जिसकी मदद से वह सवाल को समझने की दिशा में कदम बढ़ाए। आप देख सकते हैं कि इस स्थिति में आपके बिना जितना वह प्रदर्शन कर सकते थें उससे कहीं ज्यादा आपकी मौजूदगी में कर रहे हैं। आपका मार्गदर्शन उन्हें सीखने में मदद कर रहा है। हमने अभी जो कुछ कहा है, अब इसका एक उदाहरण देखिए।

उपरोक्त विवरण के संदर्भ में हमें यह भी समझना होगा कि यदि हम बच्चों को सवाल हल करने का तरीका दिखाकर उससे इसी तरह करने को कहते हैं, तो हम उनके संज्ञानात्मक विकास को अवरूद्ध करते हैं। रटकर सीखने या निष्क्रिय रूप से सीखते जाने की अपेक्षा, रचनावादी ढंग से **सीखने का मतलब है समझना व आत्मसात् करना।**

वायगोत्सकी के अनुसार, बच्चे के सांस्कृतिक विकास में प्रत्येक क्रिया दो बार होती है: एक सामाजिक स्तर पर (प्दजमत . चमतेवदंस) और फिर बच्चे के अन्दर (प्दजतं . चम तेव द ं स)। उनके अनुसार मार्गदर्शित रचनावादी ढंग से सीखना एक ऐसी प्रक्रिया है जो कई चरणों से गुजरती है। आइए इन चरणों पर एक–एक करके विचार करें।

चरण 1 **(कार्य करने में किसी और ज्यादा जानकार व्यक्ति से मदद मिलती है)** : सीखने वाले को किसी ज्यादा जानकर बड़े या हमउम्र से सीधे मदद मिलती है। इस चरण में बच्ची के साथ काम करते हुए यह व्यक्ति उसे यह खोज करने में मदद देता है कि वह पहले से क्या जानती है और इसका उस सवाल से क्या संबंध है जो वह हल करने की कोशिश कर रही है।

चरण 2 **(कार्य करने में खुद की मदद)** : बच्चे स्वयं अपनी मदद करने लगते हैं जो पहले किसी बड़े द्वारा की जाती थी। बड़े की मदद सिर्फ इतनी चाहिए कि वह पहले के सवाल और नए सवाल के बीच समानताएँ इंगित कर दे।

चरण 3 **(कार्य सहज हो जाता है)** : बच्ची को कोई कार्य करने के लिए न तो बाहरी मदद चाहिए और न ही उसे बार–बार सोचना पड़ता है कि अगला कदम क्या होगा। अब वह वैसे सारे सवाल हल कर सकती है जिनसे चरण 2 में उसका सम्पर्क हो चुका है।

चरण 4 **(इस प्रक्रिया का उपयोग बार–बार, अन्य गतिविधियों के लिए भी किया जाता है)** : जब बच्ची एक तरह के सोचने के ढंग और किसी दक्षता पर महारत हासिल कर लेती है और किसी क्षेत्र में उस वक्त तक बच्ची का जितना विकास सम्भव है, वह हो चुका होता है, तो अन्य क्षेत्र खुलने लगते हैं।

यदि आप ऊपर दिए गए उदाहरण का विश्लेषण करें तो आप पाएँगें कि बच्चों ने पहले स्वयं समस्या समाधान का प्रयास किया और जब उन्हें आगे बढ़ने में कठिनाई का अनुभव हुआ तब उन्होंने अपने शिक्षक से मदद मांगी। वायगोत्सकी इसे समीपस्थ विकास का क्षेत्र (zone of proximal development & ZPD) कहते हैं। यह बच्चे की वर्तमान क्षमता और समस्या समाधान की अन्तर्निहित क्षमता के बीच अंतर को दर्शाता है। इस पूरी प्रक्रिया को जिसमें बड़े बच्चों को सवाल हल करने तथा अपनी समझ बनाने में सहारा देते हैं, 'स्कैफोल्डिंग' (scaffolding) कहलाती है। आपने

ध्यान दिया होगा कि मार्गदर्शन संबंधी पूरी चर्चा में हमने ज्यादातर मार्गदर्शक की एक बड़े के रूप में बात की है। ऐसा जरूरीनहीं है। दरअसल, यह व्यक्ति ऐसी कोई भी बड़ी या बच्ची हो सकती है, जिसके पास चर्चित अवधारणाओं की ज्यादा समझ हो। सीखने के लिए मार्गदर्शकों का एक और अच्छा वर्ग है उम्दा तरीके से लिखी गई पुस्तकें। उदाहरण के लिए ऐसा एक मार्गदर्शक है आपकी पाठ्य सामग्री। यह आपका सम्पर्क कुछ विचारों से करवाती है, आपके सामने कुछ अभ्यास प्रस्तुत करती है और इन विचारों से जूझने में आपकी सहायता करती है।

वीडियो देखने के लिए कृपया नीचे दिए गए लिंक पर क्लिक करें या दिए गए क्यूआर कोड को स्कैन करें

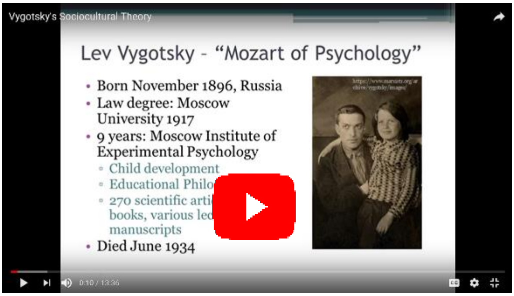

https://www.youtube.com/watch?v=ye2XoLKSo_s

गतिविधि

आप अपने आस पास के कुछ बच्चों से बात करें कि उन्होने अपने से बड़ों की सहायता से क्या–क्या सीखा है? क्या वे उनकी सहायता के बिना भी सीख सकते थे।

4.5.2 सामाजिक-सांस्कृतिक सिद्धान्त के शैक्षिक निहितार्थ एवं समालोचना

वायगोत्स्की के सिद्धान्त का यह मानना है कि सीखना एक सहयोगी प्रक्रिया है जिसमें बच्चे दूसरों से अत:क्रिया करके सीखते हैं। विद्यालय की बच्चे के सीखने में एक अहम भूमिका होती है क्योंकि विद्यालय बच्चों की सोच, नज़रिए और व्यवहार को प्रभावित करता है। विद्यालय का प्रभाव सकारात्मक और नकारात्मक दोनों हो सकता है। यदि शिक्षक बच्चों की क्षमता को नहीं पहचान पाते और उनको पर्याप्त बढ़ावा नहीं देते तो बच्चों की क्षमता घट सकती है। यह जरूरी है कि शिक्षक बच्चों के पूर्व ज्ञान को पहचाने और उसे बढ़ाने का प्रयास करे। अन्यथा बच्चों के लिए स्कूली व्यवस्था असफलता का कारण बन जाती है। अर्थात यदि बच्चों को शिक्षक ''स्कैकोल्ड'' नहीं कर पाते तो बच्चे सीख नहीं पाते।

इस सिद्धांत में विद्यालय और घर के बीच एक सार्थक संबंध बनाने पर जोर दिया जाता है क्योंकि ऐसा होने से बच्चों का सीखना ज़्यादा अर्थपूर्ण और सार्थक होता है। परिवार में बच्चे स्वाभाविक रूप से बातचीत कर पाते है इसलिए वहाँ सीखने का एक अच्छा वातावरण बनता है।

लेकिन, यहाँ यह सवाल भी उठता है कि वयस्क को कितनी मदद करनी चाहिए। यदि बच्चे उन कार्यों में सफल हो जाते हैं तो वयस्क को अपना सहयोग कम कर देना चाहिए। इस तरह बच्चे धीरे–धीरे स्वावलंबी हो जाते हैं। कई बार शिक्षक को बच्चों का ध्यान किए जा रहे कार्य के किसी महत्त्वपूर्ण पहलू पर आकर्षित करना होता है। अकेला छोड़ दिया जाए तो संभव है कि उनका उन पहलुओं पर ध्यान न जाए। वयस्क द्वारा दिए गए सहयोग से बच्चों को सोचने का एक ढाँचा मिलता है। इससे सीखना अर्थपूर्ण हो जाता है। जब बच्चे भाषा द्वारा अपने विचार व्यक्त करते हैं तो उनकी सोच का विस्तार होता है।

सीखने के लिए यह आवश्यक है कि शिक्षक बच्चों के समीपस्थ विकास का क्षेत्र पहचान पाएँ। परन्तु कक्षा की स्थिति में शिक्षक हर बच्चे के समीपस्थ विकास के क्षेत्र को पहचान कर उसके अनुरूप गतिविधि आयोजित नहीं कर पाते। कई बार तो हम उल्टा ही करते हैं, बच्चों के सीखने को नियंत्रित करने की कोशिश करते है।

आदर्श स्थिति वह होती है जहाँ शिक्षक बच्चों को वह दिखाते या बताते हैं जो बच्चों के पूर्व ज्ञान से जुड़ा हुआ हो। परंतु अक्सर कक्षा में हम ऐसे सवाल पूछते हैं जो बच्चों के ज्ञान के अभाव को उजागर करता है। बच्चों से इस तरह के सवाल पूछना प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं।

एक शिक्षक को चाहिए कि वह हर बच्चे की स्थिति को पहचानकर उपयुक्त प्रतिक्रिया दे सके? इसका एक तरीका है सहपाठियों से सीखना। इसमें शिक्षक ऐसे काम करवाते हैं जिसमें एक विद्यार्थी दूसरे विद्यार्थी के समीपस्थ विकास के क्षेत्र में पहुँचने में मदद करते हैं। बच्चे ऐसी सहयोगी प्रक्रियाओं में हुई चर्चा और संवाद को आत्मसात करते हैं और सीखना सम्भव हो पाता है।

यदि बच्चों को ऐसी कोई समस्या या विषय को मिल कर हल करने या खोज करने के लिए दिया जाए तो सीखने पर क्या प्रभाव पड़ता है? जब बेनेट और डीन नामक शोधकर्ताओं ने प्राथमिक कक्षा के बच्चों को समूह में कार्य करने लिए दिया तो पाया कि उनकी भाषा और विचार की गुणवत्ता में वृद्धि पायी गयी। सहयोगी कार्य करते वक्त बच्चों में प्रतिस्पर्धा की भावना और अपने सामाजिक स्तर को बनाये रखने की चाह कम होती है। वे तर्क पूर्ण ढंग से सोचते हैं। ऐसा तब ज्यादा होता है जब उन्हें ऐसे कार्य दिये जाते है जिनमें विभिन्न दृष्टिकोण और मतभेद होते हैं और उन्हें अपनी राय व्यक्त करने का मौका दिया जाता है।

यदि शिक्षक सामूहिक कार्य की व्यवस्थित योजना बनाते हैं तब बच्चों में प्रश्न पूछने और आलोचना करने की क्षमता बढ़ती है और वह कार्य को कर पाते हैं। ऐसा करते हुए वे दूसरों को समझने की कोशिश करते है, अपना विचार बताते हैं और बहस का विश्लेषण करते है। वे समझ कर सीखते हैं जिससे उनका संज्ञानात्मक विकास होता है।

वायगोत्स्की के विचार पाठ्यक्रम को भी प्रभावित करते हैं क्योंकि वे कहते है कि बच्चों अतःक्रिया से सीखते हैं। पाठ्यक्रम भी ऐसा हो जो सीखने वाले और सीखे जाने वाले कार्य में अंतःक्रिया को बढ़ाता है।

यह सिद्धान्त मूल्यांकन के तरीकों पर भी रोशनी डालता है। समीपस्थ विकास के क्षेत्र की अवधारणा इस ओर इंगित करती है कि मूल्यांकन पद्धतियों को वास्तविक एवं संभावित क्षमताओं के स्तर को ध्यान में रखना चाहिए।

वायगोत्स्की के सिद्धान्त द्वारा हम यह समझ पाते हैं कि संज्ञानात्मक विकास में सामाजिक अनुभव बच्चों के संज्ञानात्मक कौशलों को किस तरह प्रभावित करते हैं और उनमें भिन्नता क्यों पायी जाती है। उदाहरण के लिए साक्षर समाज लिखने–पढ़ने, गणित की क्षमताओं पर जोर देते है इसलिए उनके बच्चे इन कौशलों में बेहतर होते है बनिस्पत उनके जिन्हें औपचारिक शिक्षा के कम मौके मिलते हैं।

वायगोत्स्की का मानना था कि जब बच्चे अपने से सक्षम व्यक्तियों से अंतःक्रिया करते हैं तो वे एक प्रकार का स्वयं का अवलोकन करते हैं,चिंतन करते हैं और उसमें परिवर्तन लाते हैं। इस तरह अभिभावक/शिक्षक बच्चे की सोच में विस्तार लाने में सहयोग करते हैं।

वायगोत्स्की के विचारों को खूब सराहा गया परन्तु उनकी आलोचना भी हुई। उन्होंने उच्च संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं के विकास में चित्रों, नक्शों आदि प्रतीकों को महत्त्व तो दिया परंतु भाषा की भूमिका को कुछ ज्यादा ही महत्त्व दिया। कुछ संस्कृतियाँ बच्चों के सीखने में भाषा के बजाय अवलोकन और सामाजिक गतिविधियों में भाग लेने पर ज्यादा जोर देती हैं।

एक बात और – वायगोत्स्की ने संज्ञान के विकास में समाज और संस्कृति के प्रभाव को तो खूब महत्त्व दिया परंतु जैविकता के योगदान को नजर अंदाज कर दिया। उदाहरण के लिए उन्होंने यह नहीं देखा कि किस तरह बच्चों की गत्यात्मकता, स्मृति, समस्या समाधान की क्षमताएँ, बच्चों के सामाजिक अनुभवों मे बदलाव लाती हैं। इन क्षमताओं के कारण उच्च श्रेणी का संज्ञान उभरता है। ना ही वे यह स्पष्ट कर पाए कि किस तरह बच्चे अपने सामाजिक अनुभवों को आत्मसात करते है जिससे उनकी मानसिक कार्यकुशलता बढ़ती है।

4.6 समेकन

इस इकाई के माध्यम से हमने सीखने में समाज की भूमिका को समझने का प्रयास किया। बैण्डुरा के सामाजिक सिद्धांत के अनुसार बच्चे समाज के विभिन्न मॉडलों का अवलोकन एवं अनुकरण के द्वारा सीखते हैं। यह सिद्धांत व्यवहार के दो पक्ष पुनर्बलन एवं दण्ड पर आधारित है। सीखने में

स्वनियमन और स्वकुशलता के महत्व को भी गहराई से समझा। आगे के खण्ड में, वायगोत्सकी ने अपने सिद्धांत में यह प्रस्तुत किया कि बच्चे के संज्ञानात्मक विकास के लिए सामाजिक व सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का बहुत बड़ा योगदान होता है। वायगोत्सकी के अनुसार बच्चों में ज्ञानात्मक कुशलताएँ शब्दों, भाषा व संवाद के माध्यम से होती है। ज्ञानात्मक कुशलताओं के विकास में शब्द, भाषा व संवाद मनोवैज्ञानिक उपकरणों के रूप में कार्य करते हुए माने जा सकते हैं। इस तरह इन सिद्धांतों ने सीखने में समाज की भूमिका को रेखांकित किया।

इकाई की विस्तृत समझ के लिए निम्नलिखित ई–संसाधनों का भी उपयोग जरूर करें :

- इकाई के विषयवस्तु पर निर्मित आई.सी.टी. /ऑडियो–विजुअल/एनिमेशन सामग्री।
- प्रारम्भिक स्तर की पाठ्यपुस्तकों पर आधारित डिजिटल सामग्री, जो इस इकाई से सम्बंधित हों।
- इकाई के विषयवस्तु से सम्बंधित फिल्म, डॉक्युमेंटरी, प्रेजेन्टेशन, वेब–रिसोर्स, ओपेन रिसोर्स, आदि।

4.7 प्रदत्त कार्य

1. बैण्डुरा के सामाजिक–अधिगम सिद्धांत के प्रमुख बिन्दुओं का विश्लेषण करें और उसके उदाहरणों को प्रस्तुत करें।
2. स्थानापन्न पुनर्बलन से आप क्या समझते हैं? कक्षागत शिक्षण से कुछ उदाहरणों को प्रस्तुत करने हुए समझाएं।
3. बैण्डुरा का सिद्धांत व्यवहारवादी सिद्धांत से किस प्रकार अलग है? स्पष्ट करें।
4. वायगोत्सकी के सामाजिक सांस्कृतिक सिद्धान्त का शिक्षक के लिए क्या महत्त्व है?इस पर लेख लिखिए।

5. वायगोत्सकी के समीपस्थ विकास के क्षेत्र की सीखने में क्या भूमिका है? उदाहरण देकर स्पष्ट करें।
6. वायगोत्स्की के सिद्धान्त के अनुसार बच्चे के संज्ञान के विकास में उसके समाजिक अनुभव और भाषा की क्या भूमिका होती है?
7. सहारा लगाना ";बंिविसकपदहद्ध की व्याख्या कीजिए व अपने विचार व्यक्त करते हुए अपने अनुभव भी बताएं।
8. सीखने की योजना पर बैण्डुरा एवं वायगोत्सकी के विचारों को क्या कोई प्रभाव है, तर्क देते हुए स्पष्ट करें।

इकाई 5

बच्चों में सम्प्रत्यय विकास

5.1 परिचय

5.2 उद्देश्य

5.3 पूर्व अनुभव

5.4 बच्चों में सम्प्रत्यय विकास

5.4.1 सम्प्रत्यय विकास से सम्बंधित मानसिक प्रक्रियाएं

5.4.2 सम्प्रत्यय विकास से सम्बंधित सैद्धांतिक आधार

5.5 कार्य–कारण की समझ का विकास

5.6 सम्प्रत्यय विकास को प्रभावित करने वाले कारक

5.7 समेकन

5.8 प्रदत्त कार्य

5.1 परिचय

बच्चे जन्म से ही कुछ न कुछ सीखते रहते हैं। वे अपनी ज्ञानेन्द्रियों से प्रत्येक पल मिलने वाले नए–पुराने अनुभवों के आधार पर अपने सम्प्रत्ययों को गढ़ते रहते हैं। सम्प्रत्यय विकास हर बच्चे के लिए जरूरी है क्योंकि इसी के आधार पर वे अपने जीवन की हर गतिविधि को संचालित करते हैं। उदाहरण के तौर पर, रीता दूसरी कक्षा में बच्चों को अलग–अलग पशुओं के चित्र दिखाती है। वह उनको गाय, बकरी और भैंस का चित्र दिखाते हुए एक समान्य गुण निकालने के लिए कहती है। बच्चे जवाब देते हैं कि इन सभी पशुओं के चार पैर हैं और सभी पालतु पशु हैं। उसी तरह, जब कासिफ़ से यह पूछा जाता है कि वह अपने स्कूल से विद्यालय किस रास्ते से जाता है, तो वह उन सभी जरूरी बातों को क्रमानुसार बताता है, जिसका पालन करते हुए उसके घर पहुंचा जा सकता है। अब सवाल यह उठता है कि ये जवाब देने में कैसे सक्षम हो पाते हैं और जवाब देने से पूर्व उनके मस्तिष्क में क्या प्रकियाएं चलती हैं। इस संदर्भ में, प्रस्तुत इकाई में हम यह समझने का प्रयास करेंगे कि बच्चों में संप्रत्यय का विकास किस प्रकार होता है तथा बच्चे विभिन्न स्थितियों, वस्तुओं, कार्यों, कारणों के मध्य किस प्रकार सम्बंध स्थापित करते हुए सम्प्रत्यय बनाते हैं।

5.2 उद्देश्य

इस इकाई के माध्यम से हम :

- संप्रत्यय की अवधारणा की समझ बनाएंगे।
- संप्रत्यय विकास का बच्चों के सीखने के संदर्भ में महत्व एवं उपयोगिता को समझेंगे।
- संप्रत्यय विकास के सैद्धांतिक आधारों से अवगत होंगे तथा उनके शैक्षिक निहितार्थों को समझेंगे।
- बच्चों में कार्य–कारण की समझ कैसे बनती है, इसका विश्लेषण करेंगे।

5.3 पूर्व अनुभव

पिछली इकाइयों में हमने विभिन्न सैद्धांतिक व्याख्याओं के माध्यम से जाना कि बच्चों का संज्ञानात्मक विकास कैसे होता है, वे किसी बात या कार्य को कैसे सीखते हैं, उसमें किन–किन की भूमिका होती है। हम सब अपने सम्प्रत्यय के आधार पर ही कार्य करते हैं। विद्यालय में हमारे कई सवालों का जवाब बच्चे जिस तरह से देते हैं, उसके पीछे उनके द्वारा निर्मित सम्प्रत्यय है। अतः, सम्प्रत्यय का विकास हमारे जीवन से जुड़ा हुआ है, जिसका इस्तेमाल हम हररोज करते हैं।

5.4 बच्चों में सम्प्रत्यय विकास

आँखे हैं, एक चोंच है और वह उड़ सकता है। वह बच्चा अपने परिवार के लोगों को उसे कौआ कहते बार–बार सुनता है तो वह भी उस पक्षी के समान विशेषता वाले पक्षी को कौआ कहने लगता है। इस तरह, बच्चा कौआ के संप्रत्यय को सीख जाता है और उसके मस्तिष्क में कौए से सम्बन्धित एक विचार, प्रतिमा या प्रतिमान (Pattern) का निर्माण हो जाता है। इसी विचार, प्रतिमा या प्रतिमान को संप्रत्यय (Concept) कहते हैं। धीरे–धीरे बच्चा बिल्ली, मेज़, कुर्सी, वृक्ष आदि सैंकड़ों संप्रत्ययों का निर्माण कर लेता है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि वस्तुओं के सामान्य गुणों के आधार पर बनने वाले मानसिक प्रारूप को संप्रत्यय कहते हैं।

संप्रत्यय वास्तव में एक चयनात्मक तंत्र है, जिसमें व्यक्ति उपस्थित उत्तेजना तथा पूर्व अनुभव के बीच सम्बन्ध स्थापित करता है। ऊपर के उदाहरण पर यदि ध्यान दें तो यह बात स्पष्ट हो जाएगी। बच्चे में कौआ से सम्बन्धित पूर्व अनुभव पहले से है। जब वह किसी स्थान पर दूसरा कौआ देखता है तो वह इसका सम्बन्ध अपने पूर्व अनुभव के साथ जोड़ देता है और कहता है कि यह कौआ है। यदि वह मैना को देखता है तो अपने पूर्व अनुभव के साथ इसका सम्बन्ध नहीं जोड़ पाता है अर्थात वह समझने लगता है कि यह कौआ नहीं है। इससे हम समझते हैं कि बच्चों में संप्रत्ययों के आधार पर उनके पूर्व अनुभव, पूर्व संवेदनायें और पूर्व प्रत्यक्षीकरण होते हैं।

बच्चों में संप्रत्यय विकास के संदर्भ में माना जाता है कि पहले इनमें मुर्त (Concrete) संप्रत्यय जैसे माता, पिता आदि विकसित होते हैं और बाद में अमूर्त संप्रत्यय (Abstract Concept) जैसे खुशी (Happiness), दु:ख (Grief) आदि विकसित होते हैं। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि बच्चों में संप्रत्यय विकास सरल एवं मूर्त (Simple and Concrete) से जटिल एवं अमूर्त (Complex and Abstract) की ओर होता है। बच्चों में पहले एक अस्पष्ट (Vague) संप्रत्यय विकसित होता है। बाद में जब उनके संज्ञानात्मक विकास का स्तर बढ़ता है तो वह एक स्पष्ट एवं विशिष्ट संप्रत्यय विकसित कर लेते हैं। साथ ही, यह भी कहा जा सकता है कि बच्चों में संप्रत्यय श्रेणीबद्ध होते हैं। जैसे–जैसे बच्चों की उम्र बढ़ती है, वे बहुत सारे जटिल संप्रत्ययों को सीख लेते हैं और उन्हें आपस में भिन्न एवं स्पष्ट रखने के लिए एक श्रेणी में सुव्यस्थित कर लेते हैं। लेकिन, यह भी समझना जरूरी है कि हर बच्चे के सम्प्रत्यय विकास और उसपर आधारित चिंतन में आधारभूत समानताओं के साथ ही कई विविधताएं भी हो सकती हैं। तभी तो किसी एक चीज के बारे में ही यदि अलग–अलग बच्चों से पूछें तो हो सकता है कि वे अलग–अलग जवाब दें।

उदाहरण के तौर पर, यदि बच्चों को कुछ फलों और सब्जियों को देकर उन्हें वर्गीकृत करने को कहें तो हो सकता है कि सामान्यत: वे उन्हें फल और सब्जी की दो कोटियों में वर्गीकृत कर दें। पर, ऐसा भी हो सकता है कि वे उस कोटि से आगे बढ़ते हुए कुछ उपकाटियों में भी उन्हें दुबारा वर्गीकृत करें। यह भी हो सकता है कि बच्चे वर्गीकरण को कोई दूसरी कसौटी अपनाएं।

गतिविधि

आप अलग–अलग प्रकार के फल–सब्जियों को बच्चों को देकर उन्हें वर्गीकृत करने को कहें। देखें कि उनका वर्गीकरण क्या होता है। उनसे जानने कि कोशिश करें कि उन्होंने वैसा वर्गीकरण क्यों किया।

5.4.1 सम्प्रत्यय विकास से सम्बंधित मानसिक प्रक्रियाएं

सम्प्रत्यय निर्माण करने में बच्चों को विभिन्न मानसिक प्रक्रियाएँ से गुजरना पड़ता है, जिनका संक्षिप्त विविरण निम्नलिखित है।

निरीक्षण (Observation): बच्चे अवलोकन के माध्यम से विभिन्न सम्प्रत्ययों या मानसिक प्रतिमाओं का निर्माण करता है। उदाहरणार्थ, एक तनजात शिशु कई चेहरों को देखता है, आवाजें सुनता है, कई तरह के स्वाद से परिचित होता है। उसके आधार पर सम्प्रत्यय बनाता है। उसी तरह, विद्यालय में बच्चों को विभिन्न प्रकार के शिक्षण उपयोगी वस्तुओं या प्रयोगों को दिखाकर उनमें सम्प्रत्यय निर्माण किया जा सकता है। जैसे–कलम, पेंसिल, कापी, आदि।

तुलना (Comparison): अवलोकन के माध्यम से बच्चे तरह तरह के चीजों से परिचित होने के साथ–साथ उनमें तुलना करना भी सीखते हैं। जैसे– बच्चे अपने कपड़ों में तुलना करते हैं, कौन सा खिलौना लेना है या किस गिलास में पानी पिना है, इन सब के दौरान वे तुलना करते रहते हैं। तुलना करने की कई कसौटियों हो सकती हैं जैसे–आकार, रंग, बनावट, उपयोगिता, आदि। उसी तरह कलम, पेंसिल, चॉक, में तुलना करना।

पृथक्करण (Abstraction): उडवर्थ (Woodworth, 1938) के अनुसार प्रत्यय रचना का आधार पृथक्करण (Abstraction) है। उनके अनुसार भिन्न–भिन्न वस्तुओं में समान तत्वों को अलग कर लेना ही प्रत्यय रचना है। बच्चे समान तत्वों वाली वस्तुओं को अन्य वस्तुओं से अलग करना सीख लेते हैं। उनका यही सीखना प्रत्यय रचना कहलाता है। उदाहरण के तौर पर, यदि हम बच्चों को भिन्न भिन्न रंग के कलम और किताबें दे ंतो वे अलग–अलग रंग होने के वावजूद सभी कलमों को एक कोटि में और किताबों को अलग कोटि में रखेंगे। ऐसा इसलिए क्योंकि उन्होंने उनमें से वैसे गुणों को पृथक करके उन्हें वर्गीकरण की कसौटी बना ली, जो प्रमुख हैं।

सामान्यीकरण (Generalisation): समान गुणों का संग्रह करने के कारण बच्चों के लिए काले, लाल, सफेद आदि रंगों के कलम में कोई अन्तर नहीं रह जाता है। उसी तरह, उन्हें किसी भी रंग, आकार, स्वरूप की कॉपी दी जाए, वे उसे कॉपी ही कहेंगे। वैसे ही, जब कोई बच्चा देखता है कि एक खास तरह के पक्षी को लोग तोता कहते हैं। तो वह इस प्रकार के पक्षी के समरूप तत्वों या समान विशेषताओं को समझ लेता है और बाद में उन विशेषताओं वाले पक्षी को तोता कहने लगता है। अतः उनका सम्प्रत्यय स्पष्ट रूप धारण कर लेता है।

सक्रिय खोज सिद्धान्त (Active-Search Theory) के अनुसार सामान्यीकरण (Generalisation) को प्रत्यय विकास का आधार माना जाता है। इस सिद्धान्त के अनुसार प्रत्यय के विकास में व्यक्ति का सक्रिय सहयोग रहता है। सक्रिय खोज सिद्धान्त के अनुसार पहले व्यक्ति एक परिकल्पना का निर्माण कना है, फिर अपने अनुभव के आधार पर उसकी

जाँच करता है और आवश्यकता अनुसार उसमें परिवर्त्तन लाता है, जिससे एक खास प्रत्यय का निर्माण होता है।

परिभाशा निर्माण (Definition Formation): बच्चे उपर्युक्त चार स्तरों के माध्यम से सम्प्रत्यय का निर्माण करते हैं। उन सब के आधार पर, उनमें विभिन्न वस्तुओं के बारे में वैसी परिभाषाएं अर्थात उनकी विशेषताओं का विवरण भी देने की क्षमता विकसित हो जाती है। उदाहरण के तौर पर, जैसे ही हम खाना कहते हैं जो वे उससे सम्बंधित बुनियादी परिभाषा को तुरन्त गढ़ लेते हैं।

अब तक हमने यह जान लिया है कि संप्रत्यय निर्माण में कौन–कौन सी मानसिक प्रक्रियाएँ होती हैं। साथ ही यह समझा कि बच्चों में संप्रत्यय विकास के लिए यह आवश्यक है कि उसे अपनी पुरानी अनुभूतियों (Old Experience) एवं नई अनुभूतियों (New Experience) के बीच संबंध स्थापित करने की पर्याप्त क्षमता हो। जब बच्चों को यह पाता है कि नई वस्तुओं में बहुत सारी अनुभूतियाँ वैसी हैं जो उसके गत अनुभवों (Past Experience) के अनुरूप हैं, तो उससे संप्रत्यय का विकास उसमें तेजी से होता है। इस तरह की व्याख्या को हमने पियाजे द्वारा प्रतिपादित आत्मसातीकरण एवं समायोजन की अवधारणा में भी समझा है।

गतिविधि

> क्या वाकई में बच्चों का सम्प्रत्यय विकास उपरोक्त चरणों से गुजरते हुए होता है? कुछ आंकडों को एकत्र करके उनका विश्लेषण करें।

5.4.2 सम्प्रत्यय विकास से सम्बंधित सैद्धांतिक आधार

जे० एस० ब्रुनर (J.S. Bruner, 1964, 66) ने संज्ञानात्मक विकास का अध्ययन किया। इनका मानना है कि बच्चों में अनुभूतियों की मदद से संप्रत्ययों का विकास होता है। उन्होंने मूलतः दो प्रश्नों के उत्तर ढूँढ़ने में रूचि दिखाई। पहला यह कि बच्चे किस ढ़ंग से अपनी अनुभूतियों

(म्गचमतपमदबम) को मानसिक रूप से बताते हैं और दूसरा यह कि शैशवावस्था व बाल्यावस्था में बच्चों का मानसिक चिंतन कैसे होता है?

उक्त दोनों प्रश्नों का उत्तर ब्रुनर ने अपने सिद्धान्त में देने की कोशिश की है। ब्रुनर के अनुसार शिशु अपनी अनुभूतियों को मानसिक रूप से तीन तरीकों द्वारा बताता है–

1. सक्रियता (Enactive),
2. दृश्य प्रतिमा (Iconic),
3. सांकेतिक (Symbolic)

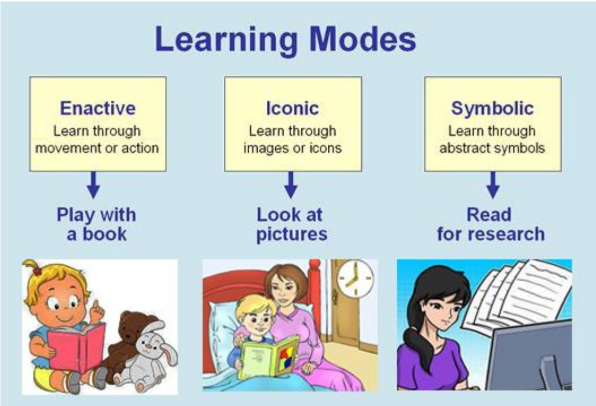

सक्रियता विधि (Enactive Mode): सक्रियता एक ऐसा तरीका है जिसमें बच्चे अपनी अनुभूतियों को क्रिया द्वारा व्यक्त करते हैं। जैसे दूध की बोतल देखकर शिशु द्वारा मुँह चलाना, हाथ पैर फेंकना, एक सक्रियता विधि का उदाहरण है जिसके द्वारा वह दूध पीने की इच्छा की अभिव्यक्ति करता है।

दृश्य प्रतिमा विधि (Iconic Mode): इस विधि में बच्चा अपने मन में कुछ दृश्य प्रतिमायें (Visual Images) बनाकर अपनी अनुभूतियों की अभिव्यक्ति करना है।

सांकेतिक विधि (Symbolic Mode): इस विधि में बच्चा भाषा (Language) द्वारा द्वारा अपनी अनुभूतियों की अभिव्यक्ति करता है।

ब्रुनर (1966) ने अपने अध्ययनों के आधार पर बताया है कि इन तीनों (सक्रियता, दृश्य प्रतिमा तथा सांकेतिक) विधियों के प्रत्यय (Concept) का विकास एक क्रम में होता है। जन्म से करीब 18 महीनों तक सक्रियता विधि की प्रधानता होती है। 1.5 वर्ष या 2 वर्ष की उम्र में दृश्य प्रतिमा विधि की प्रधानता होती है और करीब 7 वर्ष की आयु से सांकेतिक विधि की प्रधानता होती है।

ब्रुनर के सिद्धान्त के उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि ब्रुनर ने भी पियाजे के समान की संज्ञानात्मक विकास को एक क्रमिक प्रक्रिया माना है तथा बच्चों के चिंतन में संकेत तथा प्रतिमा को महत्वपूर्ण माना है।

संप्रत्यय प्राप्ति एक अनुदेशात्मक रणनीति है जिसे ब्रुनर तथा उनके साथियों के द्वारा किए गए शोध पर प्रयोग करके किसी संप्रत्यय में शिक्षक बच्चों के पूर्व अनुभवों का प्रयोग करके किसी संप्रत्यय की रचना करने की कोशिश करते हैं। इसमें पहले बच्चों को कुछ चित्र दिखाए जाते हैं या शब्द दिए जाते हैं। बच्चों से उन चित्रों में समानतायें ढूंढ़कर दो श्रेणियों में बाँटने के लिए कहा जाता है। एक जिनमें संप्रत्यय की विशेषताएँ हैं और दूसरी जिनमें संप्रत्यय की विशेषताएँ नहीं है। फिर इस परिकल्पना का अन्य उदाहरणों द्वारा परीक्षण किया जाता है।

वीडियो देखने के लिए कृपया नीचे दिए गए लिंक पर क्लिक करें या दिए गए क्यूआर कोड को स्कैन करें

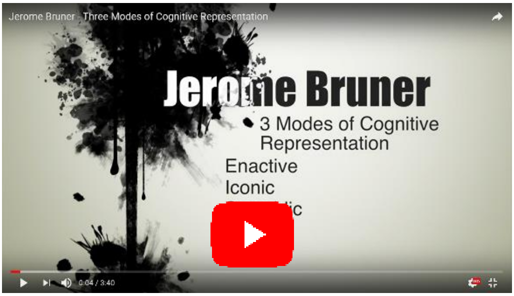

https://www.youtube.com/watch?v=x9kH8bEHWhs

गतिविधि

- सविता कक्षा–4 को सजीव वस्तुओं का संप्रत्यय सीखाना चाहती हैं। आपके अनुसार इसके लिए उन्हें क्या करना चाहिए। एक सीखने की योजना बनाएं जो सम्प्रत्यय विकास के सिद्धांतों पर आधारित हो।
- राजीव को कक्षा–5 के बच्चों को प्रदुषण का संप्रत्यय सीखाना है। आप इसके लिए क्या तरीका अपनाएंगें।
- क्या बच्चों का सम्प्रत्यय विकास एक जैसा ही होता है, इस पर अपने अध्ययन केन्द्र पर परिचर्चा करें।

5.5 कार्य-कारण की समझ का विकास

सम्प्रत्यय निर्माण के साथ ही बच्चों में वैज्ञानिक चेतना को बढ़ाने में कार्य–कारण की समझ का होना जरूरी है। पियाजे के अनुसार हर बच्चे छोटे वैज्ञानिक होते हैं। वो वस्तुओं और घटनाओं पर क्रिया करके अपनी अवधारणाओं का निर्माण करता रहता है और इसी से अपने आस–पास की दुनिया की समझ बनाती है। बस फर्क सिर्फ इतना होता है कि छोटा बच्चा बड़े से अलग सोचता है, अलग तरीके से तर्क लगाता है और अलग निष्कर्ष पर पहुँचता है। जैसे कि हमने गणित शिक्षण के कोर्स में पढ़ा कि गणितीय और वैज्ञानिक दृष्टीकोण उम्र के साथ विकसित होता है। पियाजें के अवस्था सिद्धांत में हमने पढ़ा कि कैसे छोटे बच्चे (पूर्व संक्रियात्मक अवस्था) मात्रा के संरक्षण (conservation of values and quantities) को समझने में चूक करते हैं और कैसे उम्र के साथ वे इस समझ में अपने आप परिपक्व होते जाते हैं। इस संदर्भ में निम्नलिखित बिन्दुओं पर ध्यान देना जरूरी है :

संज्ञान और कार्यकारण की समझः क्या दुनिया गोल है, यह समझना बहुत सारे बच्चों के लिए मुश्किल है। क्योंकि वे उसके तर्क को समझने के लिए अलग–अलग सम्प्रत्ययों का इस्तेमाल करते हैं। यदि पियाजे के सिद्धांत को ले जो बच्चों में यह समझ तभी विकसित हो सकती है जब उनमें इससे

सम्बंधित स्कीमा विकसित हो जाए। उसी तरह, बारिश क्यों और कैसे होता है, यह समझना भी संज्ञान और कार्यकारण की समझ पर निर्भर करता है। शिक्षकों के लिए यह महत्वपूर्ण है कि वे अपने शिक्षण में किसी भी अवधारणा को कार्य–कारण सम्बंधों के माध्यम से समझने–समझाने का भरसक प्रयास करें।

वैज्ञानिक दृष्टीकोण का उम्र से संबंध: संज्ञानात्मक विकास और वैज्ञानिक दृष्टीकोण के विकास में संबंध समझने के लिए आइए फिर से पियाजे के संरक्षण के प्रयोग को देखे :

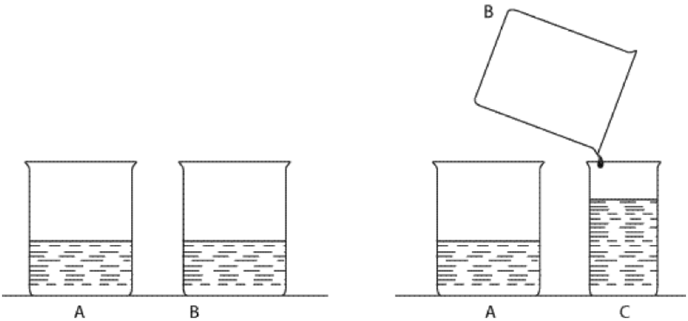

Figure A

Figure B

प्रयोग विधि:

4–6 वर्ष के बच्चे के सामने पहले दो एक समान बर्तन रखिए। दोनों में बराबर मात्रा में (एक बराबर स्तर तक) पानी डालिए। पूछिए क्या दोनों बराबर है?

फिर उनके सामने उन्हीं दोनों बर्तनों के पानी को दो अलग–अलग आकार के बर्तनों में उलट लीजिए। आकार ऐसे हो कि एक लम्बाई में ज्यादा हो, और दूसरा चपटा हो (चित्र–ठ देखें) जिससे उनमें डाले पानी के स्तर में अंतर नज़र आए। अब फिर पूछे क्या दोनों बराबर है? इस उम्र में बच्चे समान्यतः यह नहीं मानते कि दोनों बराबर हैं। सब कुछ प्रत्यक्ष घटता देख भी वे अ–वैज्ञानिक निष्कर्ष पर पहुँचते हैं।

अब अगर आप यही प्रयोग 7 वर्ष से ऊपर के बच्चों के साथ दोहराएंगे तो आप देखेंगे कि बच्चे बता पाएंगे कि दोनों मात्राएँ बराबर हैं। वे आपको इस का कारण भी बता पाएंगे। अब उनकी तार्किक क्षमता बेहतर हो गई है। उनमें कार्य कारण की समझ का विकास हो रहा है।

इस प्रयोग के दौरान यदि आप छोटे बच्चे को यह बताएं तो भी बच्चा आश्वस्त नहीं होगा कि दोनों बर्तनों में पानी बराबर है। पियाजे और इनहेल्ड के अनुसार बच्चा संज्ञानात्मक रूप से अभी इसके लिए परिपक्व नहीं हुआ है।

आइए इन सवालों पर पुनः विचार करें–

- क्या दोनों उम्र के बच्चे अपने जवाब का कारण स्पष्ट कर पाए?
- उनमें से कौन वैज्ञानिक तरीके से कार्य कारण समझा पाया?
- क्या 8–10 वर्ष की ऐसी बच्ची जो स्कूल नहीं जाती, वैज्ञानिक दृष्टीकोण से इस प्रयोग का जवाब देगी?
- क्या आप अपने अनुभव से ऐसा कोई उदाहरण दे सकते हैं जो संरक्षण या कार्य कारण की समझ को उल्लेखित करता हो?

वैज्ञानिक दृष्टिकोण के विकास में सामाजिक तथ्यों का भूमिकाः

गणित या विज्ञान सीखने से तात्पर्य तथ्यों को रट लेना नहीं है। बल्कि बच्चों में सोचने के एक नए दृष्टिकोण के विकास से है। उन तथ्यों या सिद्धान्तों के असल जीवन में व्यापकता और निहितार्थ को समझ पाना ही वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास है। इसमें परिपक्वता बहुत अहम भूमिका निभाती है। उम्र के उस पड़ाव से पहले आप बच्चों को विज्ञान के वे सिद्धान्त नहीं सिख सकते जिनके लिए वे संज्ञानात्मक रूप से तैयार नहीं है। हमारा उम्रवार पाठ्यक्रम भी इसी अवधारणा को ध्यान में रखकर ही बनाया जाता है।

स्कूल व स्कूल के बाहर बच्चों के पास ऐसे कई अवसर होते हैं जिनसे वे वैज्ञानिक तर्क–वितर्क सीखते हैं व इस तरीके या दृष्टिकोण को आत्मसात करते हैं। अपने दैनिक जीवन में कई मौकों पर बच्चे इसका प्रदर्शन करने लगते हैं। और स्कूल में इन्हीं को वैज्ञानिक सिद्धान्तों के रूप में पढ़ते हैं।

यहाँ एक बड़ा मतभेद है इस समझ को प्रभावित करने वाले कारकों के संदर्भ में। जहाँ पियाजे कहते हैं कि बच्चा खुद से ही अकेले ही वस्तुओं पर प्रयोग करके उनके बारे में अपनी अवधारणाएं (concepts) बनाता है। इस प्रक्रिया में अभिभावक, शिक्षक, साथी समूह, आदि केवल वातावरण उपलब्ध कराते हैं (facilitators) इससे ज्यादा कुछ नहीं। इस मौके पर आप याद कीजिए, या फिर से देखिए कि पियाजे और वायोगोत्सकी के सीखने के सिद्धान्तों में क्या मूलभूत अंतर है।

Zone of Proximal Development (ZPD) और सहायक ढ़ाँचा (scaffolding) क्या होता है? (बच्चों के सीखने के संदर्भ में?)

ZPD एक अंतःक्रिया आधारित सीखने की प्रक्रिया को नाम दिया गया है। इसमें कोई व्यक्ति किसी समस्या से जूझ रहा होता है। उसके काम में असफल होने पर कोई अन्य व्यक्ति या उपकरण सहायता करते हैं (scaffold यानि सहायक ढाँचा बनाकर), ऐसी बातचीत सवाल–जवाब, तर्क–वितर्क के माध्यम से जो व्यक्ति को समाधान के करीब ले जाए। इस तरह पहले के संज्ञान और समाधान ढूँढ लेने के बाद के संज्ञान के स्तर में अंतर या फासले को वायोगोत्सकी ˆच्क कहते है। इस बारे में आप इकाई–4 में अध्ययन कर चुके हैं।

इसमें शिक्षक, साथी, अभिभावक आदि की भूमिका प्रमुख हो जाती है, इनके अलावा भाषा भी इसी प्रकार का एक माध्यम है; पाठ्यचर्या, कैल्कुलेटर भी इसी श्रेणी में आते हैं। शिक्षक इस प्रक्रिया में केवल माध्यम नहीं रहते, बल्कि बच्चों के सीखने में बेहद सक्रिय भूमिका निभाते हैं।

बच्चों में कार्य कारण के विकास के बेहतरीन उदाहरण हमें प्रचलित लोक कथाओं व बाल साहित्य में भी देखने को मिलते हैं। बाल साहित्य में दिखता है कि अलग–अलग उम्र के बच्चे अपने अनुभव के अनुसार कैसे तर्क–वितर्क करके कार्य–कारण की समझ विकसित करते हैं। इसके अलावा इस प्रक्रिया में वयस्कों, हम उम्र साथियों, भाई–बहनों आदि की भूमिका व संभावित भूमिका के बारे में भी पता चलता है।

गतिविधि

- प्रारम्भिक कक्षा के विभिन्न पाठ्यपुस्तकों में से कुछ ऐसी अवधारणाओं की सूची बनाएं जिनकी समझ के लिए कार्य–कारण सम्बंध जरूरी है।
- शिक्षकों का कार्य–कारण सम्बंध को लेकर क्या राय है, कुछ शिक्षकों के जवाबों का विश्लेषण करें।

5.6 सम्प्रत्यय विकास को प्रभावित करने वाले कारक

एक शिक्षक बच्चों के संप्रत्यय विकास में उनकी बहुत सहायता कर सकता है। इसके लिए हमें यह जानना आवश्यक है कि कौन–कौन से कारक बच्चों में संप्रत्यय निर्माण को प्रभावित करते हैं।

गतिविधि

- अपनी कक्षा के बच्चों से पक्षी, विमान, मोटरगाड़ी, घर, आदि के सम्प्रययों के बारे में पूछे। क्या उनके संप्रत्यय अलग–अलग हैं या एक जैसे?
- बच्चों में एक ही वस्तु के अलग–अलग संप्रत्ययों के कारणों को सूचीबद्ध कीजिए।

आपने ऊपर दी गई गतिविधि में पाया होगा कि बच्चों में संप्रत्यय विकास कई कारकों जैसे उनकी बुद्धि, शिक्षण के अवसर, उनके अनुभव, उनका सामाजिक–आर्थिक स्तर, ज्ञानेंद्रियों की अवस्था आदि द्वारा प्रभावित होता है। आइए हम जानने की कोशिश करते हैं कि किस प्रकार ये कारक बच्चों के संप्रत्यय विकास को प्रभावित करहे हैं।

1. बौद्धिक परिपक्वता :– मनोवैज्ञानिकों के अनुसार बच्चों के बौद्धिक स्तर का प्रभाव उनके संप्रत्यय विकास पर पड़ता है। बौद्धिक परिपक्वता बढ़ने से बच्चों में समझने, चिंतन करने तथा तर्क करने की क्षमता का विकास होता है जिससे संप्रत्यय विकास में मदद मिलती है।

2. ज्ञानेंद्रियों की अवस्था :– बच्चे अनुभव अपनी ज्ञानेंद्रियों द्वारा करते हैं। ये अनुभूतियाँ मस्तिष्क तक पहुँचती हैं और संप्रत्यय का निर्माण होता है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि ज्ञानेंद्रियों की अवस्था का प्रभाव बच्चों के प्रत्यय विकास पर पड़ता है। उदाहरणस्वरूप अगर कोई बच्चा देख नहीं सकता तो उसमें उन सभी अनुभवों की कमी आ जायेगी जिन्हें हम देख कर महसूस करते हैं और उन सभी संप्रत्ययों के विकास में भी कमी रह जायेगी जिनमें आँखों से देखने के अनुभव सम्मलित हैं।

3. शिक्षण के अवसर :– बच्चों में संप्रत्यय विकास इस बात पर भी आधारित होता है कि उन्हें घर के तथा विद्यालय के वातावरण में सीखने के कितने अवसर मिले हैं। घर तथा विद्यालय का वातावरण जितना उत्तेजक तथा शिक्षाप्रद होगा, बच्चों में समझ शक्ति उतनी ज्यादा बढ़ती है तथा सम्प्रत्यय का विकास तेजी से होता है।

4. अनुभव :– बच्चे अपने अनुभवों से सीखते हैं। उनका प्रत्येक नया अनुभव उनके पहले से बने हुए संप्रत्ययों को प्रभावित करता है। दोनों तरह के अनुभव–प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष अनुभव दोनों का ही प्रभाव बच्चों के संप्रत्यय सीखने पर पड़ता है। पियाजे के अनुसार 6–12 वर्ष तक के बच्चे मूर्त अनुभव या प्रत्यक्ष अनुभवों के आधार पर संप्रत्यय निर्माण करते हैं परन्तु जैसे–जैसे वे बड़े होते हैं वे अमूर्त (Abstract Experience) या अप्रत्यक्ष अनुभवों के आधार पर संप्रत्ययों का निर्माण करते हैं।

5. सामाजिक–आर्थिक स्तर :– संप्रत्यय विकास में बालकों के परिवार के सामाजिक–आर्थिक स्तर का भी प्रभाव पड़ता है। जैसे मोटरगाड़ी, टेलीफोन, बंगला, झोपड़ी, फ्रिज, मटका, आदि का संप्रत्यय अलग–अलग समाज में रहने वाले बच्चों के लिए अलग–अलग होगा।

गतिविधि

- बच्चों में संप्रत्यय विकास को उनका सामाजिक–आर्थिक स्तर कैसे प्रभावित करता है। उदाहरण देकर चर्चा कीजिए।
- वैसी वस्तुओं का सम्प्रत्यत विकास बच्चों को कैसे कराया जाए जो उनके सहज अनुभव में नहीं हैं? इस पर एक परिचर्चा अपने अध्ययन केन्द्र पर करें।

5.7 समेकन

इस इकाई के माध्यम से हमने संप्रत्यय विकास के विभिन्न व्याख्याओं को समझा। हमने विविध प्रकार के मानसिक प्रक्रियाओं एवं सिद्धांतों का अध्ययन किया जो सम्प्रत्यय विकास को समझने में सहायक हैं। साथ ही, कार्यकारण की समझ के महत्व की भी हमने चर्चा की, जिसके बिना प्रारम्भिक स्तर के कई अवधारणों को सीखना–सिखाना सम्भव नहीं है। सम्प्रत्यय विकास को प्रभावित या निर्धारित करने वाले कारकों का भी अध्ययन हमने किया। इन सभी चर्चाओं के आधार पर अब यह अपेक्षा है कि सभी प्रशिक्षु अपने रोजाना के कक्षाओं में बच्चों के सम्प्रत्यय विकास के अवसरों को बेहतर बनाएं तथा अपने शिक्षण में वैसे तरीकों एवं संसाधनों को अपनाएं जिससे बच्चों को सम्प्रत्यत विकास में सहजता हो।

इकाई की विस्तृत समझ के लिए निम्नलिखित ई–संसाधनों का भी उपयोग जरूर करें :

- इकाई के विषयवस्तु पर निर्मित आई.सी.टी. /ऑडियो–विजुअल/एनिमेशन सामग्री।
- शी प्रारम्भिक स्तर की पाठ्यपुस्तकों पर आधारित डिजिटल सामग्री, जो इस इकाई से सम्बंधित हों।

- री इकाई के विषयवस्तु से सम्बंधित फिल्म, डॉक्युमेंटरी, प्रेजेन्टेशन, वेब–रिसोर्स, ओपेन रिसोर्स, आदि।

5.8 प्रदत्त कार्य

1. संप्रत्यय क्या है? उदाहरण देकर समझायें।
2. संप्रत्यय के विकास को प्रभावित करने वाले कारकों की चर्चा कीजिए?
3. कक्षा में बच्चों में संप्रत्यय विकास में कौन–कौन सी मानसिक प्रक्रियाएँ संलग्न होती है?
4. ब्रुनर के सिद्धान्त के प्रमुख बिन्दुओं का विश्लेषण करें।
5. अपनी कक्षा में आप ब्रुनर के मॉडल का उपयोग कैसे करेंगे। उदाहरण दें।
6. कार्य–कारण की समझ के विकास में सामाजिक, सांस्कृतिक तत्वों की भूमिका का विश्लेषण कीजिए।
7. पियाजे और ब्रुनर के सिद्धान्तों में क्या समानतायें हैं तथा यह किस प्रकार भिन्न हैं? चर्चा कीजिए।

बाल विकास और सीखना–1

उपयोगी पठन सामग्री

- एन.सी.ई.आर.टी. (2005). राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा–2005. नई दिल्ली : एन.सी.ई.आर.टी.
- सिंह, अरूण कुमार (2012). समाज मनोविज्ञान की रूपरेखा. पटना : मोतीलाल बनारसीदास.
- मंगल, एस. के. (2008). शिक्षा मनोविज्ञान. नई दिल्ली : हॉल ऑफ इण्डिया प्रा. लि.
- Berk, Laura E. (2007). Child Development. New Delhi: Pearson Education.
- Piaget, Jean (2002). Language and Thought of the Child. London: Routledge.
- Ranganathan, N. (2000). The Primary School Child: Development and Education. New Delhi: Orient Longman Publication.
- Woolfolk, Anita (2005). Educational Psychology. Delhi: Pearson.

इस पठन सामग्री के विशय में अपने फीडबैक तथा अन्य नोट्स लिखने के लिए

राज्य शिक्षा शोध एवं प्रशिक्षण परिषद् (एस.सी.ई.आर.टी.),

महेन्द्रू, पटना, बिहार - 800006